पर्युषण-पर्व-महात्म्य

प्रकाशक

वृहद् (वड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीचन्द्रसिंहसूरीश्वर शिष्य

पंडित काशीनाथ जैन

मुद्रकः—

मैनेजर—पं० काशीनाथ जैन ।

"नरसिंह प्रेस" २०१, हरिसन रोड, कलकत्ता ।

प्रति २०००] सन् १९२४ [मूल्य ॥≈
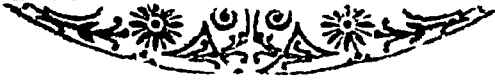
वर्तमान समयमें पर्यूषण-पर्व-माहात्म्यके प्रकाशन होनेकी नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती थी, एवं इसके अभावके कारण हिन्दी भाषा-भाषियोंको वड़ी अड़चन उपस्थित हुआ करती थी, इधर हमारे दो-चार मित्रोंने भी इसे प्रकाशित करने को अत्याधिक आग्रह कीया ; इसलिये हमने इसको प्रकाशित करनेका साहस किया है । आशा है, प्रेमी पाठकोंको हमारी अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार यह पुस्तक भी रुचिकर होगी ।

पर्यूषण-पर्वकी आराधना किस तरह करनी चाहिये, उस के लिये शास्त्रोंमें क्या-क्या विधि-विधान दिखलाया है, इस पर्व के आराधनसे प्राणियोंको क्या-क्या लाभ होते हैं, एवं इस पर्व के आराधन से प्राचीन कालके पुरुषोंने कैसा लाभ लिया है, इत्यादि वातें वड़ी ही सरल रीतिसे लिख दी गई है ।

इसके साथ राजा गजसिंह कुमारका चरित्र जोड़ दिया गया है । गजसिंह कुमारने अपने पूर्वकालमें पर्यूषण-पर्वकी आराधना की थी ; जिसके प्रभावसे उसने इस भवमें कैसे-कैसे

आनन्द अनुभव किये हैं, और उसे किस तरह अपार सम्पत्ति का लाभ हुआ'। यह सब बातें इस चरित्रके पढ़नेसे मालूम हो जाती है। हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करते हैं, कि इस का सारा चरित्र एकबार अवश्य देख जायें।

आशा है, हमारे प्रेमी पाठक इस पर्वके महात्म्यको पढ़कर इसके उपदेशानुसार आचारण कर हमारे प्रयत्नको सफल करेंगे।

यहाँ पर हम अपने माननीय धर्मोपदेशक, विविध-गुण-सम्पन्न यतिजी महाराज सूरजमलजीके पूर्ण अनुगृहीत हैं, जिन्हों ने कलकत्तेके जहोरी समुदाय में हमारी पुस्तकें प्रचार करवानेकी चेष्टा की है, आशा है, जिस प्रकार इस समय आपने हमारे काममें सहानुभूति रखी है, वसी ही सदाके लिये बनाई रखेंगे।

प्रस्तुत पुस्तकका दाम हम अपने नियमानुसार दस आना रखते; पर इसके लिये सद्गत लक्ष्मीचन्द्रजी करणावटके ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय छन्नुलालजीके स्मरणार्थ पर्यूषण-पर्वके अवसर पर उपहार देनेकी इच्छासे पहले ही ५०० प्रतियाँ लेने के लिये निश्चित वचन दे दिया था। इसलिये हमने इसका दाम दस आना न रख कर आठ आनाही रखें हैं, एतदर्थ करणावटजी के परिजनोंको धन्यवाद।

२२-८-२४
२०१ हरिसन रोड, } आपका
काशीनाथ जैन।

पर्युषण-पर्व-माहात्म्य

पहला प्रस्ताव

इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध नामका एक देश है, जिसमें अनेकानेक जिन-मन्दिर हैं। उन मन्दिरोंमें निरन्तर बड़ी धूमधामसे उत्सव हुआ करते हैं, जिनमें वीतरागके प्रचारित धर्मका पालन करनेवाले श्रद्धालु श्रावकगण सम्मिलित होते हैं। इन मन्दिरोंके आस-पास बहुत से सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंवाले बाग-बगीचे हैं। इस देशमें सबसे बड़ी, सबसे सुहावनी और परम प्रसिद्ध राजगृही नामकी नगरी है। इस नगरीके राजा सब राजाओंके शिरोमणि हैं। वे बहत्तर कलाओंके जाननेवाले, राज-नीतिमें निपुण, प्रजा-पालनमें तत्पर और सत्य, धर्म तथा दयाके अवतार हैं। उनका नाम श्रेणिक है। उनकी रानीका नाम चेलना है। वे भी अपने

स्वामीकी ही भाँति परम धार्मिका और सद्गुणशालिनी हैं। जिस समय राजा अपनी सभामें बैठते हैं, उस समय ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानों देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्र बैठे हों।

एक समयकी बात है, कि राजाके वन-रक्षकने एक जगह जंगलमें घोड़े और भैंसे, चूहे और बिल्ली, साँप और नेवले आदि परस्परके वैरी जानवरोंको एक साथ बड़े प्रेमसे विचरते देखा। यह अचरजकी बात देख, वह बड़े अचम्भे में आया और सोचने लगा, कि न मालूम, इस अनहोनी बातका नतीजा क्या होगा? वह इसी सोच-विचारमें डूबा हुआ जंगलमें इधर-उधर घूमता वैभार-पर्वतके पास आ पहुँचा। वहाँ उसने पर्वतके ऊपर श्री वीरजिनेश्वर स्वामीका समवसरण देखा, जिसमें बैठे हुए अनेक देवताओंके साथ-साथ चौंसठ इन्द्र जय-जयकारके शब्द-से तथा देवतागण दुन्दुभी-निनादसे दशों दिशाओंको गुँजा रहे थे। यह देखकर वन-रक्षकको बड़ा ही आनन्द हुआ और वह सोचने लगा,—"यह जो परस्पर एक दूसरेके जानी दुश्मन होनेपर भी सभी जानवर हिलमिल कर विचर रहे हैं, उसका कारण इन्हीं श्रीवर्द्धमानस्वामीका शुभागमन है।" यही सोच-कर उसने कुछ अनूठे फल राजाकी भेंटके लिये तोड़ लिये और उन्हें लिये हुए राजदरबारमें आ पहुँचा।

राजाके सामने फलोंकी डाली रखकर वन-रक्षकने कहा,—"महाराज! पुण्यके उदयके प्रभावसे वैभार-पर्वतके ऊपर श्रीवीर-भगवान् देवताओंके बनाये हुए समवसरणमें विराजमान हैं।"

यह सुनते ही राजा सिंहासनसे उठ खड़े हुए और जिस दिशामें प्रभुका समवसरण था, उस ओर मुंह कर सात-आठ पग आगे बढ़कर पञ्चाङ्ग नमस्कार किया। इसके बाद मुकुटके सिवा और जितने वस्त्र और आभूषण उस समय उनके शरीर पर विराजमान थे, वह सब उन्होंने उस वन-रक्षकको इनाममें दे दिया। तदनन्तर पीछे लौटकर उन्होंने आनन्द नामकी भेरी बजवायी, जिसकी ध्वनि सारी राजधानीमें गूँज गयी। सारे नगर-निवासी समझ गये, कि यह राजाकी बुलाहट है।

इसके बाद अपने परिवार, दरबार और नगरके लोगोंको साथ लिये हुए राजा श्रेणिक प्रभुके 'समवसरणकी ओर चले समवसरणके पास पहुँचते ही राजाने छत्र, चामर, वाहन, शस्त्र और पताका इन पाँचों राजचिह्नोंको छोड़ दिया और भगवान्‌की तीन बार प्रदक्षिणा कर उनकी इस प्रकार स्तुति की,—

> "अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य।
> देव! त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन ॥
> अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे।
> संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणः ॥"

अर्थात्—"हे प्रभु! आजका दिन मेरे लिये धन्य है। आज आपके चरण-कमलोंके दर्शन कर मेरी आँखें निहाल हो गयीं। आज तीनों लोकके तिलक-स्वरूप आपके दर्शन कर मुझे यह संसार-रूपी समुद्र चुल्लु भर पानीके समान मालूम पड़ता है।"

इसी प्रकार एक सहस्र कविताओं द्वारा राजाने प्रभुका

स्तवन किया। इसके बाद सब मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीगौतमगुरुकी स्तुति कर वे भगवान्‌से साढ़े तीन हाथकी दूरीपर यथायोग्य स्थानमें बैठ गये ।

उस समय भगवान्‌ने यह देशना दी,—"हे भव्य जीवो ! इस अपार संसार-रूपी जंगलमें मनुष्यका जन्म पाना बड़ा ही कठिन है। जब तुमको यह चोला मिल गया है, तब उससे काम लो और धर्मके लिये उद्यम करो। इस संसार-रूपी समुद्रसे तिरनेके लिये धर्म ही नौका है। इस शरीरसे इसी धर्मका उपार्जन करो, जिससे तुम्हें सुख होगा। जिसका मन धर्म करनेसे घबराता हो, उसे भी, निरन्तर धर्म-कार्य न बन पड़ने परभी, बीच-बीचमें थोडा अन्तर देकर धर्म-कार्य करना चाहिये। गृहस्थोंके आठों पहर घरके काम-धन्धोंकी चिन्तामें बीत जाते हैं। इसलिये यदि एक घड़ी, आधी घड़ी भी धर्मकी चिन्तामें बीते, तो उतने ही समयको सार्थक हुआ समझो। जितना बन सके, उतना धर्म कर लेना चाहिये। यदि सब दिन धर्म करते नहीं बनता, तो कमसे कम पर्वके दिनोंमें तो अवश्य ही विधि-पूर्वक पौषध आदि व्रत करना और ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। व्यर्थका आडम्बर न तो करना चाहिये, न किसीको करनेकी सलाह देनी चाहिये। ख़ास कर क्वाँर-आसोज और चैत महीनेकी अट्ठाईके दिनोंमें और पर्युषण-पर्वके अवसरपर तो अवश्य ही विशेष विधि-विधानके साथ धर्मकी आराधना करनी चाहिये।"

प्रभुकी यह देशना सुन, श्रेणिक राजाने कहा,—"हे प्रभो! कृपा कर मुझे यह बतलाइये, कि श्रीपर्युषण-पर्वमें क्या-क्या करना होता है और उसका क्या फल होता है।"

भगवान्‌ने कहा,—"हे मगधराज! सुनो, मैं तुम्हें सब बतलाये देता हूँ।—

पर्युषण-पर्वमें करने योग्य कार्य और उनके फल।

"पर्युषण-पर्वके अवसरपर चतुर्विध श्रीसंघको मिलकर श्रीवीतरागके मन्दिरकी पूजा करना, यतिकी भक्ति करना, कल्पसूत्र श्रवण करना, श्रीवीतरागकी पूजा-अर्चा और अङ्ग-रचना नित्य करना, चतुर्विध संघमें प्रभावना करना, सहधर्मियोंके साथ प्रेम करना, जीवोंको अभयदान देनेके लिये घोषणा करना, अट्ठम तप करना, ज्ञानकी पूजा करना, बीच-बीचमें श्रीसंघसे क्षमा माँगना और संवत्सरी-प्रतिक्रमण करना उचित है। इन ग्यारह कृत्योंको ग्यारह द्वार कहते हैं। (आगे चलकर इन द्वारोंका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जायेगा)।

"पर्युषणके अवसरपर सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, पोसह-व्रत करना, श्रीवीतरागकी प्रक्षाल-पूजा और चोआ-चन्दन आदिसे विलेपन करना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, दान देना, मुख्यतया दयाका भाव रखना। ये सब कृत्य इस पर्वके मानों अलङ्कार हैं। घर-गृहस्थीके झंझट तो एकदम छोड देने चाहिये। विशेषतः कूटने और पीसनेका काम नहीं करना, नाटक-तमाशे नहीं देखना, ब्रह्मचर्यकी रक्षा

करना, भूमिपर शयन करना, सचित वस्तुओंका त्याग करना, सावद्य व्यापारसे दूर रहना, कल्प-सूत्र बाँचनेवाले यतियोंके आहार-पानीका प्रबन्ध करना, रात्रिमें जागरण करना, आठ दिनों तक दोनों वेला प्रतिक्रमण करना, वस्त्रादिके द्वारा गुरुकी पूजा करना, ओछे और पाप-भरे वचन मुँहसे नहीं निकालना, पारणाके दिन साम्वत्सरिक दान देना, देव-द्रव्य तथा साधारण-द्रव्यका भण्डार बढ़ाना, ज्ञानद्रव्यकी वृद्धि करना, गीत गाना, धवल-माङ्गलिक गान करना, अनेक प्रकारके बाजे बजवाना, उत्तम वस्त्र पहनना, क्लेश, सन्ताप और शोक आदिका निवारण करना, कुङ्कुमसे पाँचों उँगलियों-की छाप लगाना, श्रीभगवान्‌की माताने रातको चौदह स्वप्न देखे थे, इसलिये उसकी यादगारमें महोत्सव करना, चन्दनसे भरे हुए कलशकी स्थापना करना, श्रीजिनके मन्दिरमें रथयात्रा आदिके महोत्सव करना। इस पर्वके उपलक्षमें श्रावकोंको यही सब काम करने चाहियें। यतिओंके कर्त्तव्य ये हैं:—संवत्सरीका प्रतिक्रमण दोनो टंकका करना, बीच-बीचमें क्षमा प्रार्थना करना, कल्पसूत्र बाँचना, शिरके बालोंका लोच करना [नोचना], अट्ठम तप करना । मुनिके लिये विषयका त्याग आदि तप करना तथा ज्ञानका आराधन करना मुख्य है। अब ऊपर श्रावकके कर्त्तव्योंके जो ग्यारह द्वार कहे हैं, उनको विस्तार-पूर्वक बतलाते हैं ।

दूसरा प्रस्ताव

पहला द्वार ।

चैत्य-परिपाटी, वन्दन-विधि और उसका फल ।

"साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—इन चतुर्विध संघोंके साथ गीत-वाद्य-युक्त तथा देव-दुन्दुभीका शब्द करते हुए ध्वजा और धूप आदिसे जगमगाती हुई श्रीवीरकी चैत्य परिपाटी करनी चाहिये। इसके बाद पौषधशालामें आकर सब साधुओंकी वन्दना करनी चाहिये। इसके अनन्तर जिन-शासन की प्रभावना करनी चाहिये। ये सब कर्म समकित-दृष्टि जीव को करने चाहियें। जो कोई इस विधिसे पर्युषण-पर्वके दिन श्रीवीतरागकी चैत्य-परिपाटी करता है, वह देवलोकमें इन्द्रत्व का सुख तथा मनुष्यलोकमें श्रेष्ठ पदवी प्राप्त करता है। यही इस क्रियाका फल है। इस प्रकार पहला द्वार समझना चाहिये।

दूसरा द्वार ।

यति-भक्तिकी विधि और उसका फल ।

"मस्तक, दोनों हाथ और दोनों घुटने—इन पाँचों अंगोंको ज़मीनपर गिराकर सम्यक् रीतिसे गुरु, यति तथा मुनिजनोंको, तैंतीस आशातनाओंको दूरकर, वंदना करनी चाहिये। इसके बाद यतिको अन्न, जल, पथ्य आदि तथा वस्त्र-पात्रादिका दान करे। पर्युषणके अवसरपर इसी तरह यतिकी भक्ति करनी चाहिये। वस्त्र, पात्र, औषध, रास्त्र, कम्बल, पुस्तक, शय्या तथा उपाधिके साथ वस्त्र एवं अन्न-जल आदि खादिम तथा मुख-वास आदि स्वादिम—ये चार प्रकारके आहार कराने चाहिये। इसके बाद भक्ति सहित उनकी स्तुति करना, सेवन करना तथा वैयावच्चका करना चाहिये। इस प्रकार जो प्राणी पर्युषण-पर्वके समय यति-साधुकी सेवा, वन्दना, भक्ति और पर्युपासना करता है, वह वैमानिक देवत्व प्राप्त करता है। यही दूसरा द्वार है।

तीसरा द्वार ।

कल्पसूत्र श्रवण करनेकी विधि, उसका महात्म्य और फल ।

"सबसे पहले कल्प-सूत्र सुननेकी विधि बतलाते हैं। वह यह है:—जो गुरु धर्मके ज्ञाता, स्वयं धर्माचरण करनेवाले, सदा सब लोगोंको धर्मकी राहमें ले जानेवाले और कल्प-सूत्रके अर्थ जाननेवाले हों, वेही शुद्धोपदेशना देनेवाले गुरु कहे जाते

हैं । ऐसे कल्पोपदेशक गुरुके सामने विनयके साथ बैठे हुए, धूप आदिकी सुगन्ध करते हुए, अच्छी बुद्धिसे उन्हींपर दृष्टि रखते हुए, एकाग्र-चित्तसे, भाव और भेद समझनेकी बुद्धिके साथ कल्पसूत्र सुनना चाहिये । कल्प-सूत्रकी पोथीके सामने विधि-पूर्वक खूब धूम-धामसे उत्सव करना और रात भर जागना चाहिये । फिर सवेरे महोत्सवके साथ उपाश्रयमें जाकर गुरुके हाथमें कल्पसूत्र देकर भावके साथ उनसे सुनना चाहिये । इसी तरह पर्युषणके अवसरपर पाँच दिनोंतक खूब मङ्गल मनाते हुए यतिसे कल्पसूत्र सुने । अब इसका माहात्म्य क्या है, वह दिखाते हैं ।

"जैसे श्रीअरिहन्तसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, मुक्तिसे बढ़कर कोई उत्तम पदवी नहीं है, श्री शत्रुञ्जयसे बढ़कर कोई अच्छा तीर्थ नहीं है, वैसे ही कल्प-सूत्रसे बढ़कर कोई उत्तम सूत्र नहीं है । इसे स्वयं वीतरागने अपने मुखसे कहा है । इसी लिये इसे बड़े आचार-विचार और तपके साथ सुनना चाहिये । कल्प-सूत्र ठीक कल्पवृक्षकी भाँति सुननेवालोंके सारे मनोरथ पूरे करता है । यह कल्पसूत्र एक बहुत बड़ी रसायन है । इससे सारे तत्त्वार्थ दीख पड़ने लगते हैं ।

"इसलिये पर्युषणके अवसरपर इसे अवश्य ही खूब विधिके साथ सुनना चाहिये । यह कल्पसूत्र पापका बन्धन काट डालने के लिये एक अनोखी चीज़ है । यह कल्पसूत्र सारी मनोकामनाएँ पूरी करता है और कलिकालमें कल्प-वृक्षके ही समान है । जो

भव्य प्राणी पूरे आदरके साथ इसे सुनता है, वह वैमानिक देवलोकमें विहार करता हुआ वहाँके सारे सुख भोगनेके बाद मोक्षरूपिणी स्त्रीकी गोदमें जाकर आराम करता है। पर्युषण पर्व सब पर्वोंसे बढ़कर है। इस पर्वके अवसरपर जो खूब सावधानीके साथ इसे सुनते हैं, वह आठ भवोंमें मोक्षपद अवश्य ही पा जाते हैं। जो पुण्य निरन्तर शुद्ध समकितका सेवन करनेसे या ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे होता है, वह इसे सुननेसे ही प्राप्त हो जाता है। नाना प्रकारके दान देनेसे, विविध प्रकारके तप करनेसे, बड़े-बड़े तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जिन पापोंका नाश होता है, वे पाप निश्चय ही एकाग्र-चित्तसे कल्पसूत्रका श्रवण करनेसे दूर हो जाते हैं। श्रीजिनशासन की पूजा प्रभावनामें एकाग्र चित्त रखनेवाले लोग यदि एक मन से शासन-प्रभावना करें, पूजा करें, तो वे निश्चयही इस संसार रूपी समुद्रके पार उतर जायें। यह तीसरा द्वार हुआ।

चौथा द्वार।

श्रीजिनेश्वरकी पूजा-विधि।

"विधिके जाननेवाले श्रावकको पर्युषण पर्व आनेपर श्रीअरिहन्तकी प्रतिमाको खूब अच्छे-अच्छे आभूषण पहनाकर रथपर स्थापित करना चाहिये और उसकी स्नात्र-पूजा करनी चाहिये। चन्दन, केसर और कस्तूरी आदिसे प्रतिमाका विलेपन कर, अष्ट प्रकारी और सत्रह प्रकारी विस्तार पूर्वक उसकी पूजा करनी

चाहिये। कहते हैं, कि सम्वत्सरीके समय, चौमासीके समय और अट्ठाईके समय सभी श्रावकोंको बड़े आदरके साथ श्रीजिनेश्वरकी पूजा करते हुए उनके गुणोंका कीर्त्तन करना चाहिये। जैसे पर्युषण-पर्वके आठ दिनोंतक श्रीनन्दीश्वर द्वीपमें वैमानिक आदि चार निकायोंके देवता मिल-जुल कर अट्ठाईका महोत्सव करते हुए श्री जिनराजकी पूजा करते हैं, वैसेही तीन चौमासों की अट्ठाई तथा चैत्र और आश्विनकी अट्ठाई; ये सब मिलकर पर्युषण सहित छः अट्ठाईयोंमें तथा श्रीजिनेश्वरके जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान-कल्याणकके दिन चार निकायोंके देव तथा विद्याधर नन्दीश्वरादिककी यात्रा करते और महोत्सव करते हैं। उसी प्रकार मनुष्य भी अपने अपने स्थानपर करते हैं।

पर्युषण-पर्वमें जिनेश्वरकी पूजा करनेका फल।

ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं, कि यदि मैं सागरोपम आदिकी सी लम्बी आयु पाऊँ और सदा आधि-व्याधियोंसे परे रहूँ, कभी किसी रोगसे ग्रसित न होऊँ, एकके बदले करोड़ों जिह्वाएँ पा जाऊँ और बोलनेकी चतुराईमें अव्वल नम्बरका होजाऊँ, तोभी सब पर्वोंमें श्रेष्ठ पर्युषण-पर्वमें पूजा करनेका जो फल है, उसका पूरा-पूरा वर्णन करनेमें समर्थ न हो सकूँगा। इस पर्वके अवसरपर पूजा करनेसे सब दिन पूजा करनेका फल मिलता है। इस पर्युषणके अवसर पर जो लोग श्रीजिनराजकी निर्दोष पूजा करते हैं वे तीसरे, सातवें या आठवें भवमें अवश्यही मोक्ष पा जाते हैं। उनके अनन्त पाप दूर हो जाते हैं, वे तमाम

ऋद्धि-सिद्धियाँ पा जाते हैं, उनकी आत्मा तीनों लोकमें अपनी कीर्त्तिसे जगमगाने लगती है।

पाँचवाँ और छठा द्वार।

स्वामी वत्सल और प्रभावना करनेकी विधि और उसका फल ।

"साधर्मिक वात्सल्य तीन प्रकारका है:—[१] श्रीसंघकी पूजा, [२] प्रभावना [३] वात्सल्य-जीमनवार। पर्युषण-पर्व आनेपर श्रीजिनराजकी पूजा करनेका अधिकार तो पहले ही कहा जा चुका है। अब यह बतलाना चाहते हैं, कि स्वामी वात्सल्य और प्रभावनाके भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेदसे तीन प्रकार हैं। प्रत्येक साधर्मी भाईको एक-एक नव-कार वाली माला प्रदान करे, यह जघन्य स्वामिवात्सल्य है। साधर्मीको अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि चार प्रकारके आहार कराये, यह मध्यम स्वामी वात्सल्य है तथा जिमानेके बाद वस्त्राभूषण पहराये, यह उत्तम स्वामिवात्सल्य है। यह सिद्धान्त-कथन है। इस लिये शक्तिके अनुसार सा-धर्मियोंको श्रद्धा सहित उत्तम भोजन कराना, ताम्बूल-पान आदि देना और वस्त्र-भूषण पहनाना चाहिये। अब श्रीसंघके वात्सल्य और प्रभावनाका क्या फल होता है और उसकी महिमा क्या है, सो कहते हैं। जिस घरके आंगनको गुणसे युक्त श्री संघ अपने चरणोंसे पवित्र करते हैं उस घरमें सदा कल्पवृक्ष फलता रहता है। उसके हाथमें सदैव चिन्ता-मणि रत्न विराज-

मान रहता है। उस घरमें गुणयुक्त और पाप रहित कामधेनु मौजूद रहती है। तीनों लोकका आधिपत्य दिलानेमें सहायक होनेवाली लक्ष्मी उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है। लक्ष्मी भी सदा यही मुँह जोहती रहती है, कि यह प्राणी मुझे अङ्गीकार कर ले। श्रीसंघको ऐसा सर्वोत्तम जानकर इसका सदैव आदर-सम्मान करना चाहिये। सर्व पदार्थमें श्रीसंघ ही उत्तम पदार्थ है, क्योंकि तत्वके जाननेवाले श्रीअरिहन्त देवने भी श्री संघको उत्तम कहा है। तत्त्वार्थ प्रतिपादन करनेवाले पण्डितगण भी श्रीसंघके दर्शनके लिये उत्सुक रहते हैं। श्रीअरिहन्त और श्रीसंघके दर्शनोंका फल एक समान समझना चाहिये। यह स्वयं श्रीतीर्थंकरकी वाणी है। जैसे रत्नोंके स्वामी पर्वतोंमें रोहणाचल श्रेष्ठ है, वैसे ही सब गुणोंसे उत्तम बना हुआ श्रीसंघ श्रेष्ठ है। इसके सिवा श्रीमन्तके समान जो श्रमण संघ है, वह पृथ्वीका उत्कृष्ट आधारभूत है। यद्यपि श्रीअरिहन्त स्वयं केवल ज्ञानसे संयुक्त हैं, तथापि अवसरसे सारे श्रीसंघकी भाव-भक्ति-पूर्वक प्रतिष्ठा करते हैं। इस लिये विश्वमें जहाँ कहीं श्रीसंघ हो, उसको नमस्कार है। एक ओर सब प्रकारके जप-तप आदिका फल और दूसरी ओर श्रीसंघकी सेवा करनेका फल रखा जाये, तो दोनोंमें श्रीसंघकी सेवाका ही फल भारी ठहरेगा। सब तीर्थोंमें यात्रा करनेका फल अधिक होता है, पर जो प्राणी इससे भी अधिक श्रीसंघको मान और आदर देता है, उसे निर्मल समकित ज्ञान हो जाता है। वह अरि-

हन्त-पद प्राप्त कर लेता है। तीसरे तीर्थंकर श्रीसम्भवजिन-चरित्रमें लिखा है, कि उन्होंने पर्युषणके अवसरपर श्रीजिन-वाणीमें दृढ़ भक्ति रखते हुए श्रीसंघकी सेवा—वात्सल्यता—की थी, इसीसे तीर्थंकरकी पदवी पायी—वे तीर्थनाथ होगये।

श्रीसंघके वात्सल्यके विषयमें

श्रीसम्भव जिनकी कथा।

"श्रीसम्भवजिनेश्वर पूर्वके तीसरे जन्ममें धातकी-खण्डके ऐरावत-क्षेत्रमें क्षेमापुरी नामक नगरीमें विमलवाहन नामके राजा थे। एक साल वहाँ बड़ा भारी अकाल पड़ा। उस वर्ष पर्युषण-पर्व लगनेपर उन्होंने सभी साधर्मिक श्रावकोंको भक्ति-पूर्वक भोजनादिक दिया। इसीके फलसे उन्होंने तीर्थङ्करका नाम-कर्म उपार्जन किया। यह बात श्रीसम्भव-चरित्रमें लिखी हुई है। बयालीस दोषोंसे रहित, कल्पनीय, शुद्ध आहार उन्होंने अनेक बड़े-बड़े मुनियोंको कराया था, इसीसे विमलवाहन राजा बड़े ही निर्मल मनवाले हो गये। उस समय राजाने स्वयं सब संघोंको यथाविधि भोजनादि कराया था और इस प्रकार सब संघोंको एक समान माना था, इसी लिये उन्होंने तीर्थङ्करकी पदवी प्राप्त की। इसके बाद राजाने श्रीस्वयंप्रभ नामक आचार्यसे दीक्षा ले ली। राजाने दीक्षा लेकर उसे भी ठीक-ठीक निवाहा। भीतरके काम, क्रोध आदि छहों वैरियोंको जीतनेके लिये वे राजर्षि संयमके रथपर सवार होकर संयम-पर्यायका

पालन करते हुए विचरण करने लगे। किसी तरहके उपसर्गसे न घबराते हुए, परिसह सहन करनेमें आनन्द मानते हुए, राजाने आयु पूरी होनेपर आवश्यक रीतिके अनुसार अनशन कर मृत्यु पायी और आनत नामक नवें देवलोकमें जा पहुँचे। दीक्षा मोक्ष-फलकी देनेवाली होती है। जो इसका थोड़ा बहुत भी पालन कर लेता है, उसे बड़ा सुख मिलता है। अस्तु; उक्त देवलोकमें कुछ दिन रहनेके बाद वे वहाँसे जम्बूद्वीपके भरतार्द्धके भूषण-स्वरूप श्रावस्ती-नगरीमें इक्ष्वाकु-वंश-रूपी उत्तम कुल-समुद्रकी गौरव-वृद्धि करनेवाले चन्द्रमाके समान, शत्रुओंको जीतकर अपना नाम सार्थक करनेवाले जितारि नामके राजाकी पटरानी सेनादेवीके गर्भमें आये। उसी समय तीनों लोकमें उजेला छा गया। उसी दिन रातके पिछले पहर रानीने अपने मुख-कमलमें प्रवेश करते हुए चौदह स्वप्न देखे। स्वप्न देखकर उनकी नींद टूट गयी और वे हर्षित होती हुई राजासे जाकर यह सब हाल सुनाने लगीं। राजाने कहा,—"निश्चय ही तुम्हारे ऐसा पुत्र-रत्न होगा, जो तीनों लोकमें वन्दनाका पात्र होगा।

गङ्गाके पानीसे जिस प्रकार समुद्र बढ़ने लगता है, वैसे ही भीतर-ही-भीतर गर्भ वृद्धि पाने लगा। किसीके देखनेमें नहीं आया। सवा नौ महीने पूरे होनेपर मार्गशीर्ष शुक्ल चौदसकी रातको मृग-नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होनेपर सूर्यके समान चमकता हुआ, सोनेकेसे रङ्गवाला, सुन्दर पुत्र रानीके गर्भसे उत्पन्न हुआ। उस अवसरपर छप्पन दिक्कुमारियों और चौं-

सठ इन्द्रोंने बड़ी धूमधामसे उत्सव किया और इसके बाद अपने अपने स्थानको चले गये । सवेरे जब राजाको पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ दी गयीं, तब उन्होंने भी इस अवसरपर खूब उत्सव कराया । जिस समय राजाके घर पुत्र रूपसे सम्भवनाथ उत्पन्न हुए, उसी समय दुर्भिक्ष दूर होकर अन्न भी उपजा, इसी लिये उनका नाम भी सम्भवनाथ रखा गया । बड़े प्रेमसे, बड़े यत्नसे कुमारका लालन-पालन होने लगा । क्रमशः वे युवावस्थाको प्राप्त हुए। उस समय वे ऐसे मालूम होते थे, मानों स्वयं मेरु-पर्वत ही पुरुष-रूपमें आकर उत्पन्न हुआ है; क्योंकि उनके शरीरका रंग सोनेके समान था, चारसौ धनुषकीसी ऊँची काया थी और वे रूपकी खान ही मालूम पड़ते थे । कुमारकी युवावस्था देख, जितारि राजाने उनका व्याह एक राजकुमारीके साथ कर दिया और वे उस राजकुमारीके साथ रहकर विविध प्रकारके साँसारिक सुख पन्द्रह लाख पूर्वतक भोगते रहे । इसके बाद जितारि राजाको संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे बड़ा आग्रह कर सम्भव-स्वामीपर ही राजपाटका भार सौंपकर किनारे हो गये । जैसे अंगूठीमें जड़ा हुआ नगीना शोभा पाता है, वैसे ही उस राज्यकी शोभा सम्भवस्वामीके सिंहासनपर बैठनेसे बहुत बढ़ गयी । राज्य छोड़ कर जितारि राजा अपने आत्मकल्याणके निमित्त गुरुके पास पहुँचे और उनके चरणों पर गिरकर उनसे दीक्षा ले ली । इधर भगवान्‌ने चौवालीस लाख पूर्वकाल पर्यन्त राज्य करते हुए सब भोग भोग लिये । एक तो वे स्वयं ही तीनों

ज्ञानोंसे संयुक्त थे, स्वयंबुद्ध थे, इसीसे उनके मनमें सदा यही विचार लेहरें मारने लगा, कि यह संसार अनित्य है, इसकी स्थितिका कोई ठीक ठीकना नहीं है। उस समय नियमानुसार लोकान्तिक देवता प्रभुके पास आ, उन्हें प्रणाम कर कहने लगे,- "हे प्रभु! धर्म-रूपी तीर्थका प्रवर्तन करो।" यह कह, वे अपने स्थानको चले गये। दीक्षा लेनेका अवसर हुआ जानकर भगवान्‌के मनमें बड़ा आनन्द और उत्साह उत्पन्न हुआ। उन्होंने साल भरतक साम्वत्सरिक दान दिया।

इस दानको देखकर चौंसठों इन्द्रोंके आसन काँप उठे। वे अपनी इन्द्राणियोंको साथ लिये हुए प्रभुके घर आये और क्रमसे उनकी दीक्षाका महोत्सव किया। इसके बाद भगवान् सिद्धार्थ नामकी पालकी पर सवार हो, नगरीके बीचसे होते हुए चम्पक-वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने एक हज़ार राजाओंके साथ-ही-साथ दीक्षा ले ली। उसी समय प्रभुको मनः पर्यवज्ञान उपजा। शक्रेन्द्र और अन्य अच्युत आदि इन्द्र भगवन्‌को नमस्कार कर अपने-अपने स्थानको चले गये। इसके बाद पृथ्वी-तलपर विच-रण करते हुए भगवान्‌ने दूसरे दिन उसी पुरीके रहनेवाले सुरेन्द्र-दत्तके घर क्षीरका पारणा किया। इस प्रकार तीन गुप्तियोंसे गुप्त और पाँच समितियोंसे समिता भगवान मौनावलम्बन किये निर्भय होकर, स्थिर भावसे, एक दृष्टिसे चौदह वर्ष तक विहार किया। इसके बाद सहस्राम्रवनमें साल-वृक्षके नीचे प्रभुको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तब उन्होंने चतुर्विध संघोंकी स्थापना

कर अपनी तीर्थयात्रा आरम्भ की। इसके अनन्तर भव्य जीवोंका पाप नाश करनेके निमित्त चौदह वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक केवल-पर्यायका पालन करते हुए भगवान विचरने लगे। सब मिलाकर साठ लाख पूर्वकी आयु पूरी कर चैत्र शुक्ल पञ्चमीके दिन, आर्द्रा नक्षत्रमें चन्द्रमाकी शुभगति आनेपर प्रभुने सम्मेद-शिखर-पर्वतके ऊपर निर्वाण प्राप्त किया। श्रीसम्भवनाथका यह चरित्र सुनकर श्रीसंघको स्वामि वात्सल्य जीमनवार करना चाहिये। इसीको स्वामि-वात्सल्य कहते हैं।

सातवाँ द्वार

अमारीकी उद्घोषणा करनेकी विधि तथा उसका फल।

पर्यूषण-पर्वके दिनोंमें सब जीवोंको अभयदान देना चाहिये। देश, नगर और पुरमें रहनेवाले नौ नारू और नौ कारू मिलाकर अठारहों वर्णोंके आरम्भका त्याग कराना, अभयदानका नगाड़ा बजवाना, सावद्य आरम्भके करनेवालोंका निवारण करना चाहिये। इस प्रकार जो अमारीका पालन करे, उसको आयु दीर्घ होती है, शरीर सुखी होती है, उसकी शोभा बढ़ती है, वंशकी बड़ाई होती है, लक्ष्मी और सम्पदाकी बड़ी वृद्धि होती है, बल-विक्रम बढ़ता है, सब पर बोल बाला होता है, बड़ाई और प्रधानता मिलती है, निरन्तर आरोग्यता रहती है, तीनों लोकमें कहीं जानेपर पूजा ही प्राप्त होती है, मनोवाञ्छित फल मिलता है, संसार-रूपी समुद्रके पार पहुँचना सहज हो

जाता है। यही सब फल मिलते हैं। सभी प्राणी सुखसे अनुराग रखते हैं और दुःखसे घबराते हैं; इसलिये जो सुख चाहनेवाले जीवोंको सुख देता है, वह निश्चय ही स्वयं सुखी होता है। इसीलिये पर्यूषण-पर्व आनेपर अमारीकी उद्घोषणा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाले भव्य जीव तीसरे भवमें मुक्तिरूपिणी स्त्रीका वरण करते हैं।

आठवाँ द्वार।

अट्ठमतपकी महिमा

पर्यूषण-पर्वमें अट्ठम तप करनेवाला पुरुष तीनों रत्नोंकी शोभा पाता है; अथवा माया आदि तीनों प्रकारके, शल्यको निकाल फेंकता है; अथवा मन, वचन और कायाके पापोंको धो-बहाता है—उस के सभी जन्म अथवा तीन भव बड़े ही पवित्र होते हैं, अथवा तीनों लोकसे बढ़कर जो मोक्षपदवी है, वही पाता है। इसलिये जो श्रावक कलियुगमें पर्यूषण-पर्व आने पर एक साथ तीन उपवास करता है, वह धन्य है। जो मुनि छः मासी या वर्षी आदि महातीव्र तप कोटी वर्ष तक करता है, वह मुनि उस पुण्यके फलसे बहुत दिनोंसे चले आते हुए पापको निर्मूल कर देता है। इसी प्रकार श्रीपर्यूषण-पर्वमें अट्ठम तप करनेसे सभी पापोंका क्षय हो जाता है। अट्ठम तप वैसा ही करना चाहिये, जैसा कि नागकेतुने किया था।

नागकेतुकी कथा।

चन्द्रकान्ता नामकी नगरीमें विजयसेन नामके राजा राज्य करते थे। वहीं श्रीकान्ति नामका एक सेठ रहता था। जिसके एक पुत्र हुआ। नागका स्वप्न देखनेके कारण उसका नाम नागकेतु रखा गया था। लड़कपनमें यह पालने पर सोया हुआ था, उसी समय इसने पर्यूषण-पर्वमें अट्ठम तप करनेकी बात सुनी थी। पूर्व भवमें उसने पर्यूषण पर्वमें अट्ठम तप किया था। इसीसे वह बात सुनतेही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। पिछले भवकी सभी बातें साफ़ दिखाई देजानेके कारण उसने माँका स्तन पान करना छोड़ दिया और अट्ठमतप किया। उसने तीन दीन तक बिलकुलही स्तन-पान नही किया। यह देख, उसके माँ-बाप बहुत घबराये। अन्तमें अपने पुत्रको मरा जानकर उन लोगोंने उसे ज़मीनके अन्दर गाड़ दिया। श्रीकान्तिका दूसरा कोई वारिस नहीं था। इसलिये राजाके आदमी उसकी मालमत्ता लेने आये। उस समय अट्ठमतपकी महिमाके प्रतापसे नाग देवताने वहाँ आकर राजपुरुषोंका निवारण किया। साथही उन्होंने यह भी कहा, कि नागकेतु मरा नहीं, बल्कि जीता है। इसके बाद उन्होंने सब लोगों को वहाँ ले जाकर ज़मीन खुदायी

जहाँ लोगोंने नागकेतुको गाड़ रखा था। मिट्टी हटाते ही जीता हुआ नागकेतु बाहर निकला। इसी प्रकार अमृत सींचकर देवताने नागकेतुको जिलाया। इसका विशेष हाल श्रीकल्पसूत्रके बाँचनेसे मालूम हो सकता है।

नवाँ द्वार।

ज्ञानकी पूजा करनेकी विधि और उसका फल।

पर्यूषणके दीनोंमें ग्रन्थके आगे कस्तुरी, कपुर, चन्दन और अगर आदिका धूप जलाना चाहिये, घीका दिया जलाना चाहिये, क्योंकि पुस्तकमें विचित्र प्रकारके अक्षर हैं। श्रीकल्पसूत्रको आचार्योंने आगमसे निकाला है। इसलिये शुभ वस्तुओं द्वारा उसकी पूजा करनेसे बड़ा पुण्य होता है। यदि ऊपर लिखे अनुसार श्रीकल्पसूत्रकी पूजा की जाये, तो संसारकी जड़ता मिट जाती है और क्रमसे भव्य जीवोंको केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।

दसवाँ द्वार।

साम्वत्सरिक प्रतिक्रमण और उसका फल।

पर्यूषण-पर्वमें जैसे अन्य आवश्यक विधियाँ बतलायी गयी हैं। वैसेही मन वचन और कायाकी शुद्धिके निमित्त गुरु मण्डलमें प्रतिक्रमण करना भी लिखा है, सालके जिस दिन संम्वत्सरिक प्रतिक्रमण करना, उस दिन बाहर भीतर रागद्वेषसे दूर रहना चाहिये। दूसरा प्रतिक्रमण पक्ष-दिवसकी विशुद्धिके

लिये पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है। यह भी विस्तारके साथ करना चाहिये। ये दोनों प्रतिक्रमण श्रावकोंको अपने लिये करना चाहिये। यह प्रतिक्रमण पाँच प्रकारके आचारोंकी शुद्धिके लिये है। यति तथा श्रावकोंको भी गुरुके साथ प्रतिक्रमण करना चाहिये। गुरुके अभावमें अकेले ही करना चाहिये। इसका फल इस प्रकार है। जो यति तथा श्रावक सम्वत्सरीके दिन ऊपर कहे अनुसार सूत्रयुक्तिसे प्रतिक्रमण करता है, वह तत्काल अपने सारे कर्मोंका जाल तोड़कर क्रमशः केवल ज्ञान पाकर मुक्ति लाभ करता है और अक्षय सुखकी लक्ष्मीका विलास अनुभव करता है।

ग्यारहवाँ द्वार ।

क्षमापना करनेकी विधि और उसका फल ।

पूर्वमें जो सब पाप कमाये हों और जो साँपके ज़हरकी तरह नस-नसमें भीने हुए हों, वे सब पाप पर्यूषणके अवसर पर सूक्ष्म और बादर सभी जीवोंसे क्षमा प्रार्थना करनेसे नष्ट हो जाते हैं। इसलिये पर्यूषणसे बढ़कर कोई उत्तम पर्व नहीं है। अतः संघमें परस्पर द्वेष-क्लेश रखना ठीक नहीं। कलह बड़े-बड़े दोषोंका घर है। करोड़ों वर्ष चारित्र-पालन करनेका फल एक घड़ी कषाय करनेसे नष्ट हो जाता है। इसलिये किसीसे लड़ाई झगड़ा नहीं रखते हुए सब जीवोंसे क्षमा करना। इसप्रकार मैत्री-भाव रखनेसे ये फल होते हैं—जो प्राणी पुराना वैर-भाव

भूलकर पर्यूषण पर्वमें सब जीवोंके साथ मैत्री भावसे क्षमा-प्रार्थना करता है, वह दोष रहित होकर मोक्षका सुख प्राप्त करता है।

पर्यूषण-पर्वमें देव-द्रव्य, ज्ञानद्रव्य तथा साधारण द्रव्यकी वृद्धि करनेका फल।

श्रीजिन शासनकी वृद्धि करने वाला जो प्रभाविक होता है। वह ज्ञान तथा दर्शनके गुणकी और द्रव्यकी वृद्धि करता है। इससे वह प्राणी तीर्थंकरकी पदवी पा जाता है। इसके विपरीत जो प्राणी देवद्रव्यकी उपेक्षा करता है, नष्ट करता है या भक्षण करता है, अथवा कोई देता हो, तो उसे नहीं देनेकी प्रेरणा करता है या रोकता है, वह प्राणी बुद्धिसे रहित हो जाता है, उसे बहुतसे पाप लग जाते हैं, अगले जन्ममें भी उसे धर्म छू नहीं जाता, वह बहुत कालतक नरकमें वास करता है। इसके सिवा जो पुरुष देवद्रव्य लेकर अपना धन बढ़ाता है, वह उसी धनके द्वारा अपने कुलका नाश करता है। वह निश्चयही मरकर नरकमें जाता है। इसलिये श्रावकको चाहिये, कि व्यापार करते हुए देवद्रव्य आदिसे बहुत बचे।

इस प्रकार बहुतसी बातें प्रभुने पहले संक्षेपमें बतलायी, फोर बहुत विस्तारके साथ कहीं और यह बतला दिया, कि इन सब विधियोंके अतिरिक्त और भी जो सब विधियाँ पहलेसे जारी हैं उनका भी पालन करना उचित है, प्रभुके मुखारविन्दसे

पर्यूषण-पर्वकी क्रियाओं और उनके फलोंकी बात सुनकर श्रेणिक राजाने पूछा,—हे भगवन्! हे श्रमणोंके इन्द्र! इन सबसे बड़े वार्षिक पर्वकी ऐसी महिमा क्योंकर हुई?"

पर्यूषण-पर्वकी महिमा।

भगवान्ने कहा,—

"हे पृथ्वीनाथ! मैं भी इस महापर्वकी महिमा वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। जैसे कोई मेघकी धाराकी गिनती नहीं कर सकता, आसमान्में उगने वाले तारों को नहीं गिन सकता गङ्गाकावी रेतीके वालुका-कणोंका हिसाब नहीं कर सकता, समुद्रके जलबिन्दुओंकी थाह नहीं पा सकता; तथा माताके स्नेहकी सीमा नहीं देख सकता; अथवा गुरुके हितोपदेशोंकी संख्याका निर्णय नहीं कर सकता, वैसेही इस पर्यूषण पर्वकी महिमाका पार पाना भी किसीके लिये सम्भव नहीं है। चाहे और-और अनहोनी बातें कोई कर भी डाले, पर यह तो एकबारगी अनहोनी है। इसलिये यह पर्व सब पर्वोंसे बढ़कर है। जैसे सब गुणोंसे विनय बढ़कर है, सब व्रतोंसे ब्रह्मचर्य बढ़कर है, सब नियमोंसे सन्तोष श्रेष्ठ है, सब तपोंसे समता भाव रखना अच्छा है, सब तत्वोंसे सम्यक्त्व उत्तम है, वैसेही सब पर्वोंमें यह पर्यूषण-पर्व बढ़चढ़ कर है—ऐसा सर्वज्ञने कहा है। जैसे सब मन्त्रोंमें पञ्च-परमेष्ठी मन्त्र उत्तम है। महिमामय तीर्थोंमें शत्रुञ्जय बढ़ाचढ़ा है, दानोंमें अभयदान और ज्ञानदान

श्रेष्ठ है, रत्नोंमें चिन्तामणि श्रेष्ठ है, राजाओंमें चक्रवर्ती उत्तम है, केवली गणमें तीर्थंकर श्रेष्ठ हैं, सम्यकृत्व-दर्शनमें क्षायक-सम्यकृत्व उत्तम है, धर्मोंमें श्रीवितराग-भाषित जिनधर्म श्रेष्ठ हैं; चारित्रोंमें यथाख्यात-चारित्र उत्तम है, ज्ञानोंमें केवल-ज्ञान उत्तम है, दानोंमें शुक्ल-ध्यान उत्तम है, रसायनोंमें अमृत उत्तम है, शंखोंमें दक्षिणावर्त-शंख उत्तम है, ज्योतिष्कमण्डलमें सूर्य उत्तम है, मण्डनोंमें तिलक उत्तम है, आभूषणोंमें मुकुट उत्तम है, देवताओंमें इन्द्र शिरोमणि है, फूलोंमें कमल अच्छा है, पक्षियोंमें गरूड़ बड़ा है, पर्वतोमें सुदर्शन नामक मेरुपर्वत श्रेष्ठ है, गणधरोंमें पुण्डरीक बढ़कर है, नदियोंमें गंगा बड़ी है, सरोवरोंमें मानस उत्तम है द्वीपोंमें जम्बूद्वीप बढ़ाचढ़ा है, क्षेत्रोंमें भरत क्षेत्र प्रधान है, सब देशोंसे सौराष्ट्रदेश बढ़कर है, जिनोंमें श्रीऋषभदेव उत्तम हैं, दिनोंमें दिवालीका दीन अच्छा है महीनोंमें भादोंका महीना अच्छा है, वैसेही सब पर्वोंमें पर्यूषण-पर्व बढ़ाचढ़ा है। इसलिये हे भव्य जीवों! इस पर्वको खूब जी लगाकर भली भाँति रीतिके अनुसार मानना चाहिये। जैसे सर्पका सार मणि है, मृगका सार कस्तुरी है, पंकका सार कमल है, क्षीर-समुद्रका सार चद्रमा है, म्यानका सार खड्ग है, देहका सार तप है, वैसेही पर्यूषण-पर्व भी सब पर्वोंका सार-भूत है। इसलिये उस पर्वके आनेपर उत्तम प्राणियोंको धर्म-कार्योंमें लग जाना चाहिये। जो मूर्ख ऐसा नहीं करता, वह अपना जन्म व्यर्थही गँवाता है। जैसे ऊसरमें बीज बोना बेकार

है, भूसी किसी काममें नहीं आती, जङ्गलमें रोना किसी कामका नहीं होता, पड़ती भूमिमे पानी बरसना व्यर्थही जाता है, खारी समुद्रके किनारे बीज बोना निष्फल जाता है, धर्मके बिना मनुष्यका जन्म अकारथ जाता है, वैसेही वार्षिक पर्यूषण पर्वकी आराधना किये बिना श्रावकका जन्म भी निष्फलही जानना चाहिये। बिना इसकी अराधना किये मुनियोंकी भी बड़ाई नहीं होती। कहा है, कि जैसे हथियारके बिना वीर शोभा नहीं देता, बुद्धिके बिना मन्त्री शोभा नहीं देता, गढ़के बिना नगर शोभा नहीं देता, दाँतके बिना हाथी शोभा नहीं देता, बहत्तर कलाओंके बिना पुरुष शोभा नहीं देता, तपके बिना ऋषि शोभा नहीं देता, शीलके बिना सती नहीं शोभा देती, दानके बिना धनवान् शोभा नहीं देता, वेदके बिना दिप शोभा नहीं देता, सुगन्धके बिना फूल शोभा नहीं देता, हँसके बिना मान-सरोवर शोभा नहीं देता, दयाके बिना धर्म शोभा नहीं देता, वैसेही श्रावक और मुनियोंका कुल भी पर्यूषण-पर्वकी अराधना किये बिना नहीं शोभा देता। जो सम्यक् प्रकारसे इस पर्वकी आराधना करता है, वह वैसेही शोभायमान मालूम होता है, जैसे चन्द्रमासे रात्रि सोहती है, सूर्यसे आकाश सोहता है, प्रतिमासे मन्दिर सोहता है, नाकसे मुह सोहता है, फूलसे लता सोहती है, सपूतसे कुल सोहता है, शीलसे कूलवधू सोहती है, संगीत-ज्ञानसे ज्ञान सोहता है और ज्ञानसे आचार्य सोहते हैं। यह श्रीजैनशासनमें बड़ी प्रभाविक पर्व है। इसकी

विधि पहले बतलायी जा चुकी है। उसी विधिके अनुसार त्रिकरण-शुद्धि करके इस पर्वकी आराधना जो भव्य प्राणी करते हैं; वे इस लोकमें ऋद्धि, वृद्धि, सुख, सौभाग्य और बाह्या-भ्यन्तर सम्पदा, निश्चयही प्राप्त करते हैं। इसके सिवा वह परलोकमें इन्द्रकी पदवी पाते हैं और क्रमसे तीर्थङ्करका पद पाकर मुक्तिवधूका आलिङ्गन करते हैं।"

इस पर्वका ऐसा महात्म्य सुनकर श्रेणीक राजाने फिर पूछा,—हे जिनेन्द्र! पहले किसने इस पर्वकी सम्यक् प्रकारसे आराधना की थी? उस आराधनाका उसको कैसा फल मिला? कृपाकर यह बात मुझे बतलाइये।"

यह सुन, श्रीवर्द्धमान स्वामीने कहा,—"हे नरेन्द्र! इस सम्बन्धमें राजा गजसिंहकी जो कथा सूत्रमें लिखी है, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ उसने शुद्ध बुद्धिसे विधि-पूर्वक इस पर्वकी आराधना की थी। इसलिये उसे बड़ा अच्छा फल मिला था। जिसके द्वारा उसे अन्तमें तीर्थङ्करकी पदवी मिली। उसका हाल मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो।"

—o—

तीसरा प्रस्ताव

राजा गजसिंहकी कथा।

इस जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्रके दक्षिण भागमें मध्यप्रदेशान्तर्गत अयवन्ती नामक देश था, जिसकी प्रधान नगरी अवयन्सनगरी इन्द्रपुरीके समान शोभायमान दीखती थी। वहाँ जयसिंह नामके राजा राज्य करते थे। वे नीतिके बड़े भारी जाननेवाले थे, इसलिये न्यायके साथ प्रजाका पालन करते थे। उनकी पटरानीका नाम कमला था, जो साक्षात् कमला—लक्ष्मी-ही थी। रानी शील और सुन्दरता आदि गुणोंसे सीताकी तरह सुशोभित हो रही थी। राजाके प्रधान मन्त्रीका नाम सुमति था, जो सब गुणोंसे भरा पूरा और श्रेष्ठ अरिहन्त-धर्मका पालक था। मन्त्री सदैव स्वामीके कार्य्यमें मन लगाये रहता था। एक दिन रातको रानीने सपनेमें एक उज्वल ऐरावत हाथी और सिंहको मुखमें प्रवेश करते देखा। जगनेपर रानीने राजासे सपनेकी बात कह सुनायी। यह सुन राजाने कहा,—"हे प्यारी! तुम्हारे एक राज्यधुरन्धर गुणवान् पुत्र होगा, यही इस स्वप्नका फल है।" यह सुन, रानी बड़ी

आनन्दित हुई। धीरे-धीरे गर्भके दिन पूरे हो गये। क्रमसे सवा नौ महिने बाद शुभ मुहूर्त्तमें, शुभ लग्नमें, रानीने एक पुत्ररत्न पैदा किया। राजाने बड़ी धूमधामसे पुत्र जन्मका उत्सव मनाया और स्वप्नके अनुसार उस लड़केका नाम गजसिंह रखा। पाँच धायें उस बालकको पालने लगीं। शुक्ल-पक्षके चन्द्रमाकी तरह धीरे—धीरे बढ़ते—बढ़ते बालक आठ वर्षका हो गया। तब पिताने उसे गुरुके पास पढ़नेके लिये भेजा। कुमार भी थोड़े ही दिनोंमें बहत्तर कलाओंमें कुशल हो गया। वह शस्त्र और शास्त्रकी कलाओंका जानकार तथा धर्म, अर्थ, और काम इन त्रिवर्गोंका पूरा साधक बन गया। क्रमसे जब राजकुमार पूरी जवानीकी उमरको पहुँचा, तब वह सुन्दरतामें कामदेवके समान, काम कलामें कोकके समान, मल्ल-विद्यामें भीमके समान, विद्यामें अर्जुनके समान, विद्याके विषयमें विद्याधरके समान युद्धमें वासुदेवके समान, दानमें कर्णके समान, और प्रतापमें सूर्य्यके समान हो कर वह युवराजका पद बड़े सुखसे निर्वाह करता रहा। इन्हीं दिनों एक बड़ा ही होशियार बढ़ई किसी दूर देशसे राजाकी सभामें आया और एक बड़ा ही सुन्दर लकड़ीका बना हुआ मोर राजाको भेंट किया। उस मोरको देख, प्रसन्न हो कर राजाने कहा,—"अहा! यदि इस मोरमें जान भी होती, तो क्याही अच्छी बात होती!" यह सुन, उस बढ़ईने कहा,—"राजन्! धारापुर नगरमें एक ब्राह्मण रहता है। वह सं-

जीविनी और गगनगामिनी विद्याओंमें सिद्ध प्राप्त कर चुका है।" यह सुन, राजाने दूत भेज कर उस ब्राह्मणको बुलवाया। ब्राह्मण दूतके साथ ही साथ वहाँ आ पहुँचा। राजाने उस ब्राह्मणका खूब आदर सत्कार कर कहा,—"हे द्विजराज! हे विद्याशाली! आप कृपाकर इस लकड़ीके मोरमें जान डाल दीजिये।" ब्राह्मणने झट स्वीकार कर लिया और बड़े ढँगसे एक यन्त्र लिख कर उस लकड़ीके मोरके गलेमें बाँध दिया। उस यन्त्रके प्रभावसे उस मोरमें जान पड़ गयी और वह आसमानमें उड़ने वाला हो गया। उसी समय वह मोर एक सर्पके साथ युद्ध करने लगा। ब्राह्मणका यह गुण देख, राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे खूब धन दान किया। उस यन्त्रका यह प्रभाव था, कि जब तक वह उस मोरके गलेमें बँधा रहता, तब तक उसमें जान रहती और खोल दिया जाता, तब वह फिर बेजान लकड़ीकी तरह हो जाता। ब्राह्मण के चले जानेपर राजाने वह मोर कुमार गजसिंहको खेलनेके लिये दे दिया। कुमार भी उसपर सवार हो कभी जंगलोंमें, कभी नये—नये गाँवों और शहरोंमें घूमते फिरते हुए नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ किया करते थे। एक दिन रातके समय अपने विश्रामभवनमें सुन्दर, सफ़ेद और मुलायम सेजपर सोये हुए कुमारके कानोंमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज़ सुनाई दी। यह सुनकर वे अपने मनमें विचार करने लगे, कि यदि मैंने इस स्त्रीका दुःख दूर न किया, तो मेरा सारा बल—पराक्रम

वह कुमार के कन्धों पर चढकर शूलिपर चढ़ाये हुए मुर्दको खाने लगी ।

व्यर्थ ही है। इस तरहका विचारकर वे हाथमें तलवार लिये उस शब्दकी खोज पर चल पड़े और जाते—जाते नगरके बाहर श्मशानमें पहुँच गये। वहाँ एक स्त्रीको रोते देख, कुमार गजसिंहने पूछा,—"हे भद्रे ! किस विपद्में पड़कर तुम इस तरह कलेजा टुकड़े—टुकड़े कर देनेवाला रोना रो रही हो ? यदि तुम मुझे अपने दुःखका कारण सुनाओ, तो मैं तुम्हारा वह दुःख दूर करूँगा।" यह सुन, वह स्त्री बोली,—"हे वीर पुरुष ! हे अयोनाथ ! सुनो। मेरा पति शूली पर है और वह इस समय बहुत भूँखा है। पर चूँकी शूली बहुत ऊँची है, इसलिये मैं वहाँतक नहीं पहुँच पाती। इसी दुःखसे मैं रो रही हूँ।" यह सुन कुमारने कहा,—"भद्रे ! तुम मेरे कन्धोंपर चढ़कर अपने पतिको भोजन देकर सन्तुष्ट करो।" कुमारकी यह बात सुनकर उस स्त्रीने ऐसा ही किया वह कुमारके कन्धोंपर चढ़कर शूलीपर चढ़ाये हुए मुर्देको खाने लगी। उसके कटकट करके हड्डी चबानेका शब्द सुनकर कुमारका माथा ठनका और वे समझ गये, कि यह तो कोई प्रेतनी है। किसी तरह मन-ही-मन धीरज धर कर कुमारने उसकी टाँग पकड़कर ज़मीन पर गिरा दिया और तलवारसे उसकी नाक काट डाली। प्रेतनी तुरत ही भाग चली। अपनी नाक कट जानेसे उसे बड़ा क्रोध हुआ और उसने उसी समय इस बातका सङ्कल्प किया, कि मैं इसका बदला ज़रूर लूँगी और कुमारको भी दुःख दूँगी। ऐसा

विचार कर, वह कुमारका ही रूप धारण कर नगरके अन्दर चली गयी और राजाके दरबारमें आ पहुँची। इसके बाद वह अन्दरमहलमें चली गयी और रानीके साथ विषय-सम्बन्धी कामक्रीड़ा करने लगी। रात बीतने पर जब राजा जगे, तब अन्तःपुरमें रानीके साथ कुमारको विषय-क्रीड़ा करते देख, कुमारका सिर उतार लेनेको दौड़े; पर वह व्यन्तरी उसी रूपमें वहाँसे भाग गयी। राजाको उस प्रेतनीका भेद नहीं मालूम हुआ। और उन्होंने उसी समय मन्त्रीको बुलवा, उन्हें कुमारकी कुल करतूतें सुना, कुमारको पकड़वा मङ्गवाने और फांसी दे देनेका हुक्म दे दिया। मन्त्रीने राजाको हज़ार समझाया; पर राजाका क्रोध नहीं ठंढा हुआ। तब लाचार वे अपने स्वामी की आज्ञाका पालन करने चले। इधर सवेरा हुआ देख, कुमार भी श्मशानसे घरकी ओर चले। वे बेचारे इस प्रेतनीके काण्डका कुछ भी हाल नहीं जानते थे, इसी लिये मन-ही-मन खुश होते हुए घर आ रहे थे। रास्ते में ही मन्त्रीसे मुलाक़ात हो गयी। उन्होंने कहा,—"हुजूर! महाराजने आपको पाते ही मार डालनेका हुक्म दिया है; पर क्यों? यह मुझे नहीं मालूम।" यह सुन, कुमारने कहा,—"हे सचिव! यदि पिताजीकी ऐसी ही आज्ञा है, तो तुम अभी मेरी गरदन काट डालो।" यह सुन, मन्त्रीने कहा,—"कुमार! यह सब दुष्टोंकी चालबाज़ी मालूम पड़ती है, इसलिये अभी तो आप कुछ दिनोंके लिये किसी दूसरे देशमें जाकर छिप रहें।"

यह सुन, कुमार, उसी मोर पर सवार हो, आसमानकी राह उड़ चले। जाते—जाते उन्होंने किसी वनमें एक सिद्ध पुरुषको सुवर्ण सिद्धि करते देखा। यह देख, कुमार नीचे उतर आये और उसके पास जाकर पूछने लगे,—"क्यों भाई, क्या तुम रसायन बना रहे हो?" उसने कहा,—"हे सत्पुरुष! मेरे पास गुरुकी दी हुई रस-सिद्धि है, परन्तु गुरुने जिस ढँगसे रस-सिद्धि करनेको कहा था, उस ढंगसे काम करने पर भी नहीं होती।" यह सुन कुमारने कहा तुम मेरे बतलाये हुए ढंगसे काम करो यह सुन, उसने कुमारकेही बतलाये अनुसार कार्य किया। तुरतही सिद्धि प्राप्त हुई। यह देख, उसे बहुतही हर्ष हुआ। उसने कुमारको कुछ सोना देना चाहा; पर कुमारने कहा,—"भो भाई! मुझे सोनेकी कोई जरूरत नहीं है।" जब इस तरह बहुत कहने-पर भी कुमारने सोना नहीं लिया, तब उसने कुमारको दो विद्याएँ सिखलायीं—पहली विद्या जलसे निर्भय-निर्विघ्न निकल आनेकी और दूसरी विद्या वह, जिसके प्रभावसे किसी तरहके हथियारकी चोट देह पर न लगे। ये दोनों विद्याएँ पाकर कुमार फिर आसमानमें उड़ चले। जाते-जाते कहीं ऊँचे-ऊँचे कंगूरोंवाले गढ़से युक्त, सफ़ेद मकानोंसे सुशोभित एक शून्य नगर दिखलाई दिया। यह देख, कुमारको बड़ा कौतूहल हुआ और वे नीचे उतरकर उस नगरमें आये। वहाँ चार देवी सरीखी, रूपवती और गुणवती कन्याएँ देखकर

कुमारने बड़े आश्चर्यके साथ उनसे पूछा,—"तुमलोग क्यों इस अकेले सूनसान जंगलमें घूम रही हो? यह कौनसा नगर है?" उनमेंसे एक कन्या बोली, —"हे बुद्धिमान्! यह नगर आनन्दपुर कहलाता है। यहाँके राजाका नाम नरसिंह है। इनके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम देवरथ और दूसरेका दानव था। इनके चार कन्याएँ भी थी, जिनमें पहलीका नाम देवसुन्दरी, दूसरीका सुरसुन्दरी, तीसरीका रत्नसुन्दरी और चौथीका रत्नवती था। इन छहों लड़के-लड़कियोंके स्नेहमें लगे हुए राजा बड़े सुखसे राज्य करते थे। एकदिन घूमने निकले। उस समय उन्होंने एक उपवनमें एक तपस्वीको देखा। राजाने तपस्वीको भोजन करानेके लिये अपने घर बुलाया। जब तपस्वीजी खाने बैठे, तब उन्हें देखनेके लिये चारों राजकुमारियाँ उनके पास चली आयीं। उनका रूप देखकर तपस्वीजीका आसन डोल गया—वे कामसे व्याकुल हो उठे। उनके चेहरेमोहरसेही उनकी बुरी वासनाका अनुमान कर राजाने उन्हें नगरसे बाहर निकलवा दिया, पर तपस्वीका मन तो वहीं अटका हुआ था। इसीलिये वह रातको फिर राजमहलके ज़नान खानेमें आ मौजूद हुआ। यह देख, राजाने मारे क्रोधके तलवार निकाल कर उसका सिर उतार लिया'। वह तपस्वी [अपने तपके प्रभावसे अपने बुरे कर्मों की निन्दा करता हुआ श्मशानका राक्षस हो गया। विभङ्ग-ज्ञानसे पूर्व जन्मका वैर याद कर वह राक्षस

इस नगरमें आकर तरह-तरहके उत्पात करने लगा और नगरके लोगोंको परेशान कर डाला और राजाको भी मार डाला। लोग अपना घर-द्वार, धन संपद् छोड़कर दूसरे-दूसरे नगरोंमें भागकर चले गये। केवल हमी चार बहनें पहले अभ्यासके कारण यहो पड़ी हैं और उसी राक्षसको देख-रेखमें हैं। हमी राजाको वह चारों कन्या हैं। यही तो हमारा और इस नगरका इतिहास है। परन्तु कुमार। इस समय वह राक्षस खानेके फ़िराकमें बाहर निकला हुआ है और अब उसके लौट आनेका समय हुआ है। अब हे सत्पुरुष! हम चारों बहनें तुम्हारी शरणमें हैं। तुम्हींको हम अपना स्वामी मानती हैं। पर हमें इस बातका बड़ा भारी सोच है, कि तुम्हें इस नगरमें रखकर उस राक्षसको नजरोंसे कैसे बचायें? यद्यपि उस राक्षसके पंजेसे बचानेके लिये तुम्हें गुप्त रूपसे छिपा रखनेको समर्थ हैं, तो भी यदि तुम उस राक्षसको वशमें कर सको, तो हम तुम्हें यहां रखनेको तैयार हैं। कुमारने कहा,—"कुमारियों! मैं उस राक्षससे नहीं डरता। मैंने कितनोही विद्याएँ सिद्ध करली है। उनकी महिमासे मैं निर्भय रहता हूँ। तो भी मैं किसी छिपी जगहमेंही रहूँगा। जब वह राक्षस यहाँ आये तब तुम चारों स्नान-मज्जन करने, केश सँवारने और गहने-कपड़े पहनने लगना, जिससे उसकी आँखें तुम लोगोंपर ललचायी नजरोंसे देखनेमें लगी रहें। उसी समय मैं उसे छकाऊँगा।

राजकुमारियोंने वैसाही करना स्वीकार कर लिया। उन सबने कुमारको एक जगह छिपाकर रख दिया। इतनेमें वह राक्षस आया। राजन्याओंने उसे बैठाकर नहलाना धुलाना शुरु किया। उनके हँसते हुए चेहरे देख-देखकर राक्षस मन-ही-मन आनन्दित होने लगा। हँसते-ही-खेलते हुए उन सबने एक बार उस राक्षसकी आंखें मुँदलीं। इतनेमें पहलेके इशारेके मुताबिक कुमार भी पीछेसे आ पहुँचे और उस राक्षसको पटक कर उसकी पीठ पर चढ़ बैठे। राक्षसने कहा,—हे धीर पुरुष! तुम मुझे छोड़ दो, तुमारा साहस और धैर्य देखकर मैं बड़ा ही संतुष्ट हुआ। तुम जो वर माँगोगे वही मैं तुम्हें दूँगा। कुमारने कहा "यदि तुम यह घर छोड़कर जंगलमें रहना स्वीकार करो, तो तुम्हें छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं।" राक्षसने स्वीकार कर लिया। कुमारने भी प्रतिज्ञानुसार उसे छोड़ दिया। तब वह जंगलमें भाग गया। कुमारने चारों राज-कुमारियोंके साथ ब्याह कर लिया। इसके बाद उन्होंने श्रीपुर नगरसे अपने दोनों सालों देवरथ और दानवको बुलवाकर यहाँका राजा बनाया। जो नगर निवासी इधर-उधर भाग गये थे, वे भी बुलवा लिये गये और नगर फिर पहलेकी तरह बस गया। अपने सालोंके आग्रहके मारे कुमार कितने ही दिन और वहीं रह गये। अच्छे लोग अधिक दिन ससुरालमें नहीं रहते, यही सोचकर एक दिन कुमारने पाँच घोड़े मँगवाये और एक पर

उस राक्षसको पकड़ कर उसकी पीठ पर चढ गए । राक्षसने कहा—हे वीर पुरुष ? तुम मुझे छोड दो ।

(पृष्ठ ३६)

आप बैठे तथा चारों पर चारों स्त्रियोंको बैठाकर रवाना हो गये। एक दिन रास्तेमें बारह कोसका जंगल पड़ा। उसमें घुसने पर जाते-जाते साँझ हो गयी। इसलिये वे लोग रातभरके लिये एक वृक्षके नीचे टिक रहे। चारों स्त्रियाँ तो सो रहीं और कुमार नंगी तलवार हाथमें लिये हुए पहरा देते रहे, इसी समय विमानमें बैठी हुई विद्याधरियाँ आकाश मार्गसे चली जा रहीं थीं। जाते-जाते उन दोनोंकी दृष्टि कुमार पर पड़ी। देखतेही वे उनके रूपपर मोहित हो गयीं और कामवासनासे प्रेरित हो, कुमारको अवस्वापिनी निद्रासे बेहोशकर वैताढ्य-पर्वत पर ले गयीं। कुमारके जाने पर चारों राजकुमारियोंकी नींद टूट गयी। जागकर अपने स्वामीको न देख, वे उन्हें वनमें चारों ओर ढूँढ़ने लगीं; पर कुमार कहीं दिखाई न पड़े। तब वे किसी-किसी तरह मनमें धैर्य धारण कर अपने-अपने घोड़े पर सवार हो, कुमारके खाली घोड़ेको साथ लिये हुई उस जंगलको पारकर दशरथपुर नामक नगरमें आ पहुँचीं। उस नगरमें धर्म और नीतिसे कोरा संभ्रक नामका एक अन्यायी राजा राज्य करता था। वह सदा परायी स्त्रियोंके फ़िराक़में रहता था। उसका मन बड़ाही पापी था और बुद्धि सदा पापसे भरी रहती थी। वह इसी तरहकी बुरी बातें सोचता हुआ खिड़की पर बैठा हुआ नगरकी ओर देख रहा था। इसी समय उसने चौराहे पर चार देवाङ्गनाओंके समान

सुन्दरी स्त्रियोंको घोड़ेपर सवार आते देखा। उनका रूप देख, राजा मोहित हो गया और उन्हें अपने वशमें करनेकी इच्छासे अपने नौकरोंको भेजकर उन चारोंको बुलवाकर अपने महलमें रखा। राजाका मतलब जानकर सब मंत्रियों और महामन्त्रियोंने राजाको ऐसा काम करनेसे रोका; पर कामके फन्देमें पड़े हुए राजाने किसीकी एक न सुनी, इधर वे चारों अपने शीलरूपी धर्मकी रक्षाके लिये पंच-परमेष्ठीका ध्यान करती हुई शासनदेवीका ध्यान करने लगीं। उसी समय कुमारियोंके पुण्य और पतिव्रताके प्रभावसे शासनदेवीने प्रकट होकर कहा,—"बेटियों! तुम ज़रा भी दुःख न मानो। तुम्हारे स्वामी कुशलसे हैं। उन्हें विद्याधरियाँ हरण कर ले गयी हैं। वह इस समय वैताढ्य पर्वतके रत्नचूड़ नामक नगरमें हैं। वह आजके तीसवें दिन प्रबल सैन्य और राजलक्ष्मीके साथ तुम्हारी खोज करते हुए यहाँ आयेंगे।" यह कह और उन चारोंके गलेमें प्रभाविक माला डालकर शासनदेवी अपने स्थानको चली गयीं। वे चारों, तीसवें दिन स्वामीसे भेंट होनेकी आशासे और शील-रक्षा करने वाली माला पा जानेसे हर्षित होती हुई उस मालाको कण्ठको पहने धर्म-ध्यानका अवलम्बन किये रहीं। इसी समय वह परस्त्री-लम्पट अन्यायी राजा काम पीड़ित होकर मीठे, अनुराग भरे और रसीले वचन बोलता हुआ उन चारों बहनोंके पास आया। ज्योंही वह आगे बढ़ा

त्योंही उस मालाके प्रभावसे वह अंधा सा हो कर पीछे मुड़ा। थोड़ी देर बाद जब आँखोंसे कुछ दिखाई पड़ने लगा, तब वह फिर आगे बढ़ा। अबके वह पहलेसे भी अन्धा हो गया। इसी प्रकार उसने तीन बार चेष्टा की; पर हर बार उसकी चेष्टा विफलही होती चली गयी। लाचार, वह निराश होकर अपने घरमें बैठ रहा।

इधर कुमार गजसिंहको विद्याधरियाँ वैताढ्य पर्वत पर ले गयीं और उन्हें अपने घर छिपाकर रखा। इसके बाद सोलहों सिंगार किये, कामकी चतुरंगिणी सेना सजे; अपनी दी हुई निद्राको कुमारको आँखोंसे हटाकर कुमारपर हाव-भाव प्रकट करती हुई प्रीतिभरी बातों और रसीली चितवनोंसे उन्हें मोहने लगीं। जागतेही उन दोनोंकी यह हरकतें देख कर कुमारने अपने मनमें विचार किया,—"अरे! ये मुझे किस लिये इस जंगलसे यहाँ उठा ले आयीं? यह नगर कौनसा है? ये स्त्रियाँ कौन हैं? इनके आगे मेरा धर्म कैसे बचने पायेगा? खैर, जो होना हो, सो हो, पर मैं अपना ब्रह्मचर्यव्रत न तोड़ूँगा। यही सोचकर वे चुपचाप रहे। अब वे कामचरित्रमें निपुण विद्याधरियाँ तरह-तरहकी काम चेष्टाएँ करती हुईं मस्तीके मारे कुमारको देहसे लिपटने और उन्हें भी मत-वाला बनाती हुईं कहने लगी, "कुमार! हम दोनोंको अपनीही स्त्री जानो। तुम्हें देखतेही हमारा कामरूपी

समुद्र उछलने लगा है। जैसे पानीके प्रवाहसे समुद्रका तूफ़ान शान्त हो जाता है, वैसेही तुम्हारे शरीरका सङ्गम होनेसे हमारा काम शान्त हो जायेगा। इसलिये हे कुमार! तुम हमारी कामवासनाको पूरा करो। इसके बदलेमें हम तुम्हें आकाश गामिनी आदि कितनीही विद्याएँ सिखला देंगी।" इस तरह काम वासनासे भरे हुए वचनोंसे वे विद्याधारियाँ कुमारको फुसलाती रहीं, पर वे एकदम विषयके ध्यानसे परे होकर चुपचाप बैठे रहे। इसी समय उन दोनों विद्याधरियोंका स्वामी वहाँ आ पहुँचा और उनकी बोली सुन, छिपकर उनकी बातें सुनने लगा। अपनी स्त्रियोंकी यह कामचेष्टा देख, उस विद्याधरने सोचा,—"ओह! यह तो कोई बड़ा ही साहसी धीर और धर्मात्मा पुरुष मालूम पड़ता है। यह पुरुष धन्य है, जो इस तरह स्त्रियोंके फन्दमें फँसकर भी अपने व्रतसे नहीं हटता। और धिक्कार है, इन कामवासनासे पीड़ित स्त्रियोंको। सच है, स्त्रियोंका यही स्वभाव है। ये कामसे सदा भरी रहती हैं। खैर, ज़रा देखूँ तो सही, कि ये कहाँतक क्या-क्या करती हैं।" यही सोचकर वह उसी तरह छिपा पड़ा रहा। इसके बाद उन स्त्रियोंने बड़े-बड़े माया-जाल फैलाये, पर कुमार ज़रा भी विचलित नहीं हुए। तब वे दोनों क्रोधसे कहने लगीं,—"सुनो! हम दोनोंने तरह-तरहसे तुमसे विनती की; पर तुमने हमारी

कही नहीं मानी। यह तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। तुम अपने जीवनमें भी सन्देह ही समझो।" यह सुन, कुमारने कहा,—माता! मैं तो एकदम नामर्द हूँ, मैं कैसे स्त्रियोंको सन्तुष्ट कर सकता हूँ?" यह सुनतेही दोनों विद्याधरियोंके हौसले पस्त हो गये। उन्होंने यह सोचकर कि इसने हमारा कहा न माना, इसलिये इसे भी तङ्ग करना चाहिये, इस तरह शोर मचाना शुरू किया,—"दौड़ो भाइयों! हमारे घरमें चोर घुसा है। यह पुकार सुनतेही नगरका कोतवाल अपने आदमियोंके साथ उस विद्याधरके घरमें आ पहुँचा और कुमारको खूब मज़बूतीसे बाँधकर उन्हें मारनेके लिये वधस्थानकी ओर ले चला। इधर विद्याधरने तो अपनी स्त्रियोंके चरित्र आँखों देखही लिये थे, इस लिये उसने अपने आदमियोंको भेजकर कुमार और कोतवालको बुलवा लिया। उनके आनेपर विद्याधरने कोतवालसे कहा,—भाई! यह बड़ा भला आदमी है। मैंने इस महापुरुषके चरित्र अपनी आँखों देखे हैं। मैंने इन स्त्रियोंके करतब देखे हैं। यह बेचारा एकदम निर्विषयी है। यह कह कुमारको नमस्कार कर उसने उन्हें अपने पास बैठाया। कोतवाल आदि सब लोग कुमारकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर गये। इसी समय वैताढ्य पर्वतके विद्याधरोंके राजा श्रीधरके नौकरोंने उससे यह सब हाल कह सुनाया। उसने कुमारको बुलवा कर उनसे उन स्त्रियोंके विषयमें पूछ-

ताड़ करनी शुरु की। कुमारने कहा,—"हे विद्याधरेन्द्र! किये हुए कर्मका भोग भोगे बिना मनुष्यका छुटकारा नहीं होता। जीव कर्मकी गतिके अधिन है। मोहविलसित कर्मके दोषसे महत् पुरुष भी मुग्ध हो जाते हैं, बड़े-बड़े धर्मात्मा भी अनुचित कर्म करने लगते हैं। फिर औरोंकी तो बात ही क्या है? यह सब करामात मेरे कर्मोंकीही थी। इसमें और किसीका कोई अपराध नहीं।" इसप्रकार उदारतासे भरे हुए अमृत समान वचन सुन, विद्याधरोंके राजाने प्रसन्न होकर कहा,—"हे कुमार! तुम धन्य हो। मेरे बड़े भाग्य थे और मेरे पूर्व जन्मोंके पुण्य बहुत थे, इसीसे तुम यहाँ आये। अब तुम मेरी बात मानकर मेरी मदनवती और मदनमञ्जरी नामक दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण कर लो।" यह सुन, कुमारने कहा,—"महाराज! किसी अनजाने कुलमें कन्या नहीं देनी चाहिये। यही शास्त्रोंकी नीति है। मुझ अनजान विदेशीको आप अपनी कन्याएँ क्यों देते हैं?" यह सुन, विद्याधरोंके राजाने कहा,—"हे कुमार! मैंने तुम्हारे रूप और लक्षणोंसेही तुम्हारे कुल और वंशका पता पा लिया। कारण, वैरागर पर्वतके सिवा और कहीं हीरा नहीं पैदा होता।" यह कह विद्याधरोंके राजाने बड़ी धुमधामके साथ अपनी दोनों पुत्रियोंका ब्याह कुमार गजसिंहके साथ कर दिया। इसके बाद उसने कुमारसे कहा,—"अब तुम हमारेही घर रहकर

उन्होंने एक लडकीको हाथीके मुँहमें जाते देख, उस हाथीको खड्गसे मारगिराया।

(पृष्ठ ४३)

राज्यका सुख भोगो।" यह सुन, कुमारने कहा,—"मेरी चार पहली स्त्रियाँ जंगलमें छुट गयी हैं, इसलिये मैं पहले तो उनकी खोजमें निकलना चाहता हूँ। जबतक मैं लौटकर नहीं आऊँ, तबतक आप अपनी पुत्रियोंको अपनेही घर रखें। मैं उन चारोंका पता लगाकर तीन महीने सात दिन बाद यहाँ आऊँगा।" यह कह, विद्याधरेन्द्रको प्रणाम कर, कुमारने उनसे विदा माँगी। विद्याधरेन्द्रने उन्हें अदृश्यञ्जन और गगन-गामिनी नामकी दो विद्याएँ सिखला दीं और जानेकी आज्ञा दे दी। कुमार आकाशकी राह चल पड़े। क्रमसे उसी वनमें पहुँचकर, जहाँ उन्होंने अपनी स्त्रियोंको छोड़ा था। उन्होंने चार पहर तक उन्हें इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा; पर वे कहीं नहीं दिखाई दीं। धीरे-धीरे रात हो गयी। उस समय उन्होंने जंगलमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज़ सुनी। वह बड़े ज़ोरसे अर्हंत्-अर्हंत् कह रही थी। उसी शब्दकी सीधपर हाथमें खड्ग लिये हुए कुमार बड़ी सावधानीके साथ चलने लगे। थोड़ी दूर आगे जाने पर उन्होंने एक लड़कीको हाथीके मुँहमें जाते देख, उस हाथीको खड्गसे मार गिराया और उस लड़कीकी जान बचाकर उससे पूछा,—"हे भद्रे! तुम किस तरह इस जंगलमें आकर इस हाथीके मुँहमें आ पड़ी! उस लड़कीने कहा,—"हे वीर पुरुष! सुनो, मैं तुम्हें अपनी सारी कथा सुनाती हूँ—

श्रीपुरनगरमें श्रीचन्द्र नामक राजा और श्रीकवती नामकी रानी थी । उनके मदनमञ्जरी नामकी एक पुत्री थी । एक दिन' पूर्व-कर्मके योगसे मदनमञ्जरीकी माता उसे बालक पनमेंही मातृहीन कर स्वर्ग जा सिधारी। बेचारी मदनमञ्जरी सौतेली माँके चक्करमें पड़ी। वह मदन-मञ्जरीसे सदैव द्वेष रखती थी । वह रोज़ राजासे उस लड़कीकी शिकायत किया करती थी । बेचारी लड़की बड़े दुःखसे दिन बिता रही थी। एक दिन उसकी सौतेली माँने बेचारी कुमारी लड़की पर बड़ा भारी अपवाद लगाया। यह सुन, वह अपने भाग्यको कोसने लगी और मरनेकी मनमें ठानकर जङ्गलमें चली आयी। मरनेकीही इच्छासे वह उस जङ्गलके एक सरोवरके पास आयी। उसी समय वहाँ जल पीनेके लिये एक हाथी आया और उसे अपनी सूँढसे पकड़ कर ले चला। इसी समय उस हाथीने एक दूसरे हाथीको आते देखा। यह देख, वह हाथी उसे लिये हुए भाग चला। हे वीर पुरुष! मैंही वह मदनमञ्जरी हूँ, जिसे तुमने हाथीके मुँहसे छुड़ाकर अपना लिया है। तुम्हीं अब मेरे प्राण दाता हुए, इस लिये मैं तुम्हेंही अपना स्वामी मानती हूँ। अन्य पुरुषोंको मैं अपना भाईही समझती हूँ। अब इस जन्ममें मैं एक मात्र तुम्हारी ही शरणमें हूँ। आज श्रीजिनधर्मरूपी कल्पतरु मेरे लिये फल ले आया। इसीसे मैं तुमसे आ मिली। आज मेरा

जन्म सफल हो गया। मैं घास-फुसके लिए घरसे चली थी और तुमसे कल्पवृक्षको पा गयी। अब तुमने मेरे साथ जैसा उपकार किया है, उसे पूराही कर दो—मेरा पाणिग्रहण कर लो। यह सुन कुमारने उसका पाणिग्रहण कर लिया और उसी जङ्गलमें रहे। इधर श्रीपुर नगरमें मदनमञ्जरीकी सौतेली माँने यह हल्ला मचाया, कि वह तो किसी परपुरुषको लेकर निकल भागी। यह सुन, राजाको बड़ा क्रोध हो गया और वे उसकी खोजमें चले। उसे ढूढ़ते हुए वे भी उसी जंगलमें आ पहुँचे। सवेरा होनेपर राज-कुमारीको कुमारके साथ घूमते देख, राजा कुमारको मारनेके लिये दौड़े। कुमार भी हाथमें तलवार लिये हुए राजाके सम्मुख आये। दोनोंमें ख़ूब देरतक लड़ाई होती रही। अन्तमें कुमारने अपनी विद्याके प्रभावसे राजा-की सारी सेनाको हरा दिया। उनके सभी सैनिक भाग चले। कुमारका यह पराक्रम देख, राजाने बड़ी विनयसे सिर झुकाकर कहा,—हे सत्वाङ्गी पुरुष। तुम्हारा पराक्रम देख-करही मालूम होता है, कि तुम उत्तम कुलके हो, परन्तु हे जामाता! तुम किस तरह मेरे जमाई हुए, यह मुझे बतला दो।" यह सुन, कुमारने कहा,—"हे राजन्! यह बात आप अपनी पुत्रीसेही पूछ लीजिये।" कुमारका इशारा पा कर कुमारीने शुरूसेही अपनी सौतेली माताके सारे चरित्र कह सुनाये। अपनी लड़कीके मुँहसे सारा

हाल सुन कर राजा बड़ेही प्रसन्न हुए। वे अपनी सारी सेना सजाकर कुमारके साथ-साथ अपने नगरकी ओर चले। इतनेमें बरसात शुरु हो गयी। पानीके मारे नदीमें बाढ़ आ गयी। राजा अपनी सेना सहित उसीके किनारे टिके रहे। इसी समय सब लोगोंने देखा, कि दो लड़कियाँ बड़े जोरसे रोती चिल्लाती हुई पानीके धारोंमें बही जा रही हैं। यह देख, सभी सैनिक हाहाकार करने लगे। कुमारकी दृष्टि भी उनपर पड़ी। वे झटपट परोपकार बुद्धिसे प्रेरित हो पानीमें कूद पड़े। थोड़ीही देरमें वे उन दोनोंको पानीसे निकाल कर बाहर ले आये। कुमारकी यह लीला देख, राजा बड़े अचम्भेमें पड़े और अपने मनमें सोचने लगे,—यह तो कोई बड़ा भारी महात्मा मालूम होता है" इसके बाद उन्होने उन लड़कियोंसे पूछा,—तुम दोनों पानीमें क्यों कर गिरी? उन्होंने कहा,—हे राजन्! सुनिये—हम दोनों दशरथपुरके शिवदास नामक व्यापारीकी लड़कियाँ हैं। वहाँ पापबुद्धि नामका राजा राज्य करता है। उसने किसी दिन चौराहे पर जाती हुई चार घुड़सवार स्त्रियोंको देखकर उन्हें अपने घरमें ला रखा और उन्हें अपनी स्त्री बना लेना चाहा। यह देख, मंत्रियों और राज्यके और-और बड़े आदमियोंने राजाको बहुत मना किया कि ऐसा काम मत कीजिये, इससे बड़ाही अनर्थ होगा; पर राजाने किसीकी एक न सुनी। जब लोगोंने

सुना,कि राजाने कई परायी स्त्रियोंको घरमें डाल लिया है, तब यह सोचकर, कि इस पापसे इस नगरमें बड़ी-बड़ी उपद्रव होंगी, सारा नगर तहस-नहस हो जायेगा, सब लोग अपनी क़ीमती चीज़ें लिये हुए अपने-अपने नातेदारोंके यहाँ जा-जाकर रहने लगे। हमारे पितानेभी हम दोनों बहनों और हमारे एक भाईको रथपर बैठाकर दूसरे नगरकी ओर भेज दिया। जब हम यहाँ आये, तब हमारा भाई रथको नदीके किनारे खड़ा कर कुछ खाने-पीनेका समान लानेके लिये गाँवमें गया। इसी समय बड़े जोरसे पानी बरसने लगा और देखते-देखते नदीमें बाढ़ आ गयी। हम दोनों उसी बाढमें बह चलीं। हमारे पुण्यके प्रभावसे इन भले आदमीने हमारी जान बचायी। अब हमारी यही इच्छा है, कि येही हमारे स्वामी हों। यह कह, वे दोनों चुपचाप खड़ी हो गयीं। उन कन्याओंके मुखसे यह बात सुनकर राजाने अपने मनमें सोचा, कि बड़े भाग्यसे मुझे ऐसा अच्छा जमाई मिला। बाढ़का पानी घटजाने पर राजा सेना सहित नदी पारकर अपने नगर पहुँचे, वहीं उन कन्याओंका भाई भी उनसे आ मिला। उन्होंने कुमारके उपकारकी बात अपने भाईसे कह सुनायी। उसने उन दोनोंका व्याह बड़ी धुमधामसे कुमारके साथ कर दिया। दोनों बहनोंमें बड़ीका नाम सुरसुन्दरी और छोटीका जयसुन्दरी था। इसके बाद कुमारने अपनी पहली चारों स्त्रियोंका हाल

राजाको सुनाकर दशरथपुरकी ओर सेना ले जानेकी आज्ञा माँगी। साथही आनन्दपुरमें अपने सालेके पास भी दूत भेजा। वह भी अपने बहनोईकी सहायता करनेके लिये सेना लिये हुए वहाँ आ पहुँचा। इधर कुमार अपने ससुर श्रीचन्द्रराजाकी चार अक्षौहिणी सेना लिये समुद्र-कल्लोलकी नाईं शोरसे भूमिको कम्पायमान करते, शत्रुका दिल दहलाते, पर्वतको हिलाते, रास्तेके सब देशोंको दबाते हुए चले। कुछ दिन बाद दशरथपुर पहुँचकर उन्होंने वहाँके क़िलेपर घेरा दिया। पाप बुद्धि राजा भी प्रबल सामन्त, सुभट, हाथी, घोड़े, रथ आदि चतुरंगिणी सेना लेकर, लाख अपशकुन होने पर भी नगरके बाहर निकला और कुमा-रकी सेनाके साथ ज़ोर अज़माने लगा। दोनों ओरकी सेनाएँ भिड़ गयीं। युद्ध होने लगा। हाथीसे हाथी, घोड़ेसे घोड़े पैदलसे पैदलका भीतिमय युद्ध होने लगा। पापबुद्धि बड़ाही अन्यायी और परस्त्री गामी था, इस लिये वह अपने पापोंके कारण युद्धमें हार गया। उसकी सेना भाग निकली। कुमारके सिपाही पापबुद्धिको जीतेजी क़ैदकर कुमारके सामने ले आये। कुमारने कहा,—“पापबुद्धि! तुमने बड़ा भारी अन्याय किया है, जिससे इस जन्ममें तो तुमने अपना राज्य गँवाया और मरने बाद नरककी तैयारी कर डाली।” इसके बाद उन्होंने उसकी हथकड़ी खुलवा दी। वह जान लेकर स्यारकी तरह दुम दबाकर भागा।

कुमारने आकर सिंहासन पर दखल कर लिया। सबने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। वे अकण्टक राज्य करने लगे। प्रजा सुखी हो गयी। उनकी चारों स्त्रियोंने भी उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया। जब उन्होंने शील-रक्षाके निमित्त दिये हुए शासनदेवीके हार दिखाये, तब उनके स्वामीके चित्तसे सारी शंका दूर हो गयी और उनके साथ-साथ सारे नगर-निवासी भी सुखी हो गये। कुमार पूर्वकृत पुण्यके प्रभावसे पाये हुए राज्यको सातों स्त्रियोंके साथ पालने लगे। कुछ दिन बाद उन्होंने अपने साले और ससुरेको विदा कर दिया। वे अपने घर चले गये।

एक दिन कुमार एक महीनेकी छुट्टी ले, मंत्रीको राज्यका भार सौंप निश्चिन्त मनसे आकाशकी राहसे वैताढ्य-पर्वतकी ओर चले। रास्तेमें एक वन पड़ता था। उसमें एक जगह एक उत्तम प्रासाद देख, विस्मित हो वे नीचे उतरे और उसके अन्दर गये। उसमें यक्षकी मूर्त्ति देख, उसे प्रणामकर उन्होंने उसकी स्तुति की। उस समय उस यक्षके देशके रहने वाले चार धूर्त्तोंने कुमारको मीठी-मीठी बातें कह कर अपने पास बुलाया और कहा,—"हे भाई! आओ, भले पधारो! बहुत दिनोंपर आये।" यह कह, उसने उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। उसपर बैठकर कुमारने अपने मनमें विचार किया, कि इसमें जरूर कोई-न-कोई भेदकी बात है। यही सोचकर उन्होंने धूर्त्तोंसे कहा,—"भाइयों!

तुम चारों जने यहाँ किस लिये आये हो? तुम लोग कौन हो? कहाँसे आये हो?" उन धूर्त्तोंने कहा,—"हे धीर पुरुष! हम लोग तो परदेशी हैं। तमामके कौतुक देखते हुए घूमते-फिरते हुए यहाँ आ पहुँचे हैं। आतेही हमने एक बड़ा अचम्भा देखा। वह हम तुम्हें सुनाए देते हैं, सुनो। इस वनमें एक पर्वत है। उसकी गुफामें एक विद्याधर रहता है, उसके चार पुत्रियाँ हैं, जो चारों युवती हो चुकी हैं। उन्होंने यहाँ यक्षके पास आकर वर माँगा। यक्षने प्रकट होकर कहा, कि मैं एक महीनेके अन्दर तुम्हारे स्वामीको यहाँ ला दूँगा। यह सुन, वे चारों बड़ी ख़ुश हुईं। हम चारों येही तमाशा देखनेके लिये यहाँ ठहर गये है। आजही वह एक महीनेकी अवधि पूरी होती है; पर उन लड़कियोंका स्वामीतो अभी तक नहीं आया। इसलिये निराश होकर वे चारों आज आगमें कूदनेवाली हैं। वे अभी यहाँसे अपनी गुफामें गयी हैं। हे सज्जन! वे उधर गयी है, इधर तुम आये हो। इस लिये तुम भी वहीं जाओ और उन कन्याओंकी जान बचाकर यक्षका वचन सत्य करो।" धूर्त्तोंकी इस लच्छेदार कहानीके फेरमें पड़कर कुमार उपकार करनेकी इच्छासे उन कुमारियोंकी सहायताके लिये चल पड़े और पर्वतकी गुफाके द्वार पर आ पहुँचे। वहाँ गुफाके द्वार परही चार सुन्दर मुखड़ेवाली कुमारियोंको सिर धुनाती हुई देखकर कुमारने सोचा,—"अरे! येहाँतो कोई बड़ीही

पेचीली बात मालूम पड़ती है यहाँ तो आगका कुण्ड जल रहा है। यह क्या मामला है? ये जव आदि होमकी साम-ग्रियाँ किस लिये रखी हैं? यह एक मरा हुआ मुर्दा भी पड़ा है। उसे रक्ताञ्जलीसे विलेपन करके कनेरका फूल उस पर चढ़ाया गया है। मन्दिरका कलश भी भरा हुआ है। यह क्या तमाशा है! खीर और पुए आदि नैवेद्यकी सब सामग्रियाँ भी रखी हैं। ये चार पुरुष भी मौजूद हैं। इन सब बातोंका तो कोई मतलबही नहीं मालूम होता।" कुमार यही सब सोच-विचार कर रहे थे, कि इतनेमें एक जटाधारी योगी कुमारके पास आकर बोला,—अहा! धन्य है! आजका दिन मेरे लिये बड़ाही अच्छा है। आज मेरी आशा पूरी हो गयी। कुमार! तुम हमारी इन चारों कन्याओंके साथ विवाह कर घर जमाई बनकर यहीं सुखसे दिन बिताओ; परन्तु अभी मुझे विद्याका साधन करना है—उसका उत्तर साधक तुम्हीं होगे।" यह सुन कुमारने उदारताके कारण उस योगीकी बात मान ली। इधर उस योगीने उन चारों धूर्त्तोंके हाथमें हथियार दे अग्नि-कुण्डके चारों ओर खड़ा कर दिया। और चारों विदिशा-ओंमें उन चारों बालिकाओंको खड़ा कर दिया। इसके बाद सब ओर बराबर नज़र दौड़ाता हुआ जाप जपने और होम करने लगा। जाप समाप्त होनेके बाद बलिदान देना पड़ता है। उस समय उसे मधु और घृतादिका होम करते

देख कुमारने अपने मनमें सोचा, कि यह तो कोई उत्तम कार्य नहीं है, पर ज़रा मैं विद्याधरेन्द्रकी दी हुई अदृश्यांजन और आकाश-गामिनी विद्याओंकी महिमा देखूँ तो सही। ऐसा मनमें विचार कर नेत्रोंमें अंजन लगा, वह योगीके पास जाकर खड़े हो रहे; किन्तु उस अंजनके प्रभावसे वह योगी उन्हें नहीं देख सका। ज्योंही योगीका जप और होम पूरा हुआ त्योंही कुमारने उसे उठाकर आगके कुण्डमें फेंक दिया। योगीको आगके कुण्डमें गिरते देख, वे चारों धूर्त्त वहाँसे भाग खड़े हुए। वे समझ गये, कि यहाँ रहनेमें मौत धरी है। इधर उस आगमें जलकर वह योगी सोनेका हो गया। तब प्रकट हो कर कुमारने उन चारों कन्याओंसे उनके नाम-धाम पूछे। उन्होंने कहा,—"हे नरदेव! हमारा हाल यों है। सुनिये—

"हरिपुर नामक नगरमें शिवदेव नामक राजा था। वह बड़े भारी अरहन्त-भक्त थे। वह प्रजाको बड़े न्यायके साथ पालते थे। उस नगरमें धनद, कामदेव, धनञ्जय, और विजय नामके चार व्यापारी रहते थे। उनमें बड़ी मित्रता थी। उनके पास बेशुमार दौलत थी, इस लिये वे धन्नासेठ कहलाते थे। एक तो वे बड़े ही अरिहन्त भक्त थे, दूसरे राजा भी उन्हें बहुत मानते थे। उन चारोंके ललिता, सुललिता, सुलोचना, और प्रगुणा नामकी चार युवतियाँ थी। वे हमीं हैं। हम चारोंमें भी बड़ी मैत्री है। हम चारोंके जीमें

श्रीवीतरागकी भक्ति भरी है। हममें विनयादि गुण भी हैं। एक दिन श्री सम्मेदशिखरकी महिमा गुरुके मुँहसे सुनकर चतुर्विध श्रीसंघको इकट्ठाकर हम लोग पिता आदि परि-वार-वर्गके साथ श्री सम्मेदशिखरपर पहुँचीं और खूब धूम-धामसे, भक्तिपूर्वक श्रीजिनेश्वरकी पूजा की, स्वामिवात्सल्य कर, दीन दुखियोंका उद्धारकर, लौट चलीं। रास्तेमें, छः महीने लग गये। एक जगह राहमें एक जङ्गल मिला। श्री संघने वहीं डेरा डाला। रातको हम चारों एक तम्बूमें सोयीं। वहींसे ये चारों धूर्त्त हमें चुराकर इस योगीके पास ले आये। इसी समय हमारे भाग्य जगे और आपने यहाँ आकर हमें अभयदान देते हुए हमें अपना बना लिया। इसलिये आप हमें अपनाकर अपनी स्त्री बना लिजिये। कुमारने बालिकाओंकी बात सुनकर उनके साथ विवाह कर लिया। इसके बाद उस सोनेके पुरुषको अग्निकुण्डसे निकाल कर वे चारों स्त्रियाँ अपने साथ लेकर हरिपुरकी ओर चलीं। गाँवपर-गाँवपार करते हुए गम्भीरपुर नामक नगरमें पहुँचकर एक बगीचेमें घोड़ा और उन कन्याओंको छोड़कर कुमार अपने साथियोंको ढूँढ़नेके लिये नगरमें आये। वे साथि-योंसे बातें करही रहे थे और नगरको देखही रहे थे, इत-नेमें उस नगरकी रहने वाली एक तेज़ वेश्या उसी वनमें क्रीड़ा करनेके लिये आयी। वह उन कन्याओंको सोनेका पुरुष साथ लिये देख, लोभसे अन्धी हो गयी और उनके पास

आकर माया फैलाती हुई बोली,—"प्यारी भाभियों ! मेरा भाई मेरेघर आया था। उसने तुम लोगोंको बुला लानेके लिये मुझे भेजा है।" यह कह, वह सब चीजोंके साथ उन लड़कियोंको अपने घर ले आयी। वहाँ पहुँचने पर वेश्याका घर देख, वे चारों स्त्रियाँ अपना धर्म बचानेके लिये एक कमरेमें घुसकर किवाड़ बन्द किये पड़ रहीं। उन्होंने इस मज़बूती से किवाड़ बन्द कर लिये, जिसमें किसी तरह खुल न सकें। इसी समय घूम-फिरकर कुमार भी उसी वनमें आ पहुँचे। परन्तु वहाँ घोड़ों, स्त्रियों और उस सुवर्ण पुरुषको न देखकर सोचने लगे,—"यह तो बड़े अचम्भेकी बात है! मालूम होता है, कि कोई धूर्त्त सब चीज़ों समेत मेरी स्त्रियोंको कहँका ले गया। इसी प्रकारकी चिन्ता करते हुए वे पैरोंको निशान देखतेही उस वेश्याके घर पहुँचे और उसी अंजनके प्रभावसे अदृश्य हो गये। उस घरमें प्रवेश करतेही उन्होंने घोड़ा आदि देखा। वह सब चीज़ें मेरीही हैं, यही सोच-कर वे पीछे लौटे और ब्राह्मणका रूप बनाये, ज्योतिषी बन कर फिर उस वेश्याके घर पहुँचे। दूरहीसे उन्हें आते देख, वह वेश्या दौड़ी हुई आयी और उन्हें आदरके साथ प्रणाम कर बैठनेके लिये आसन दे, हाथ जोड़े खड़ी होकर पूछने लगी,—"हे ब्राह्मण देवता! मेरे घरमें चार स्त्रियाँ आपसे आप आ पहुँची हैं। परन्तु न जाने किस भूतका फेरा हुआ है, कि वे किवाड़ बन्दकरके बैठी हुई हैं। यह-

दोष आप दूरकर दिजिये, तो मैं आपको मनचाही वस्तु दे सकती हूँ।" वेश्याकी यह बात सुन, कुमारने कहा,—"बीबी साहबा। ये स्त्रियाँ तो बड़े फेरेमें पड़ गयी हैं। इसलिये जबतक मैं उनके सिरसे प्रेत उतारूँ, तबतक तुम दूरही दूर रहना।" वेश्याने यह बात स्वीकार कर ली। तब कुमारने उस कमरेके पास जाकर बाहरसेही पुकारा,—"प्यारियों! कुछ चिन्ता न करो, मुझमें मन रखे रहो।" अपने स्वामीका शब्द सुनकर उन स्त्रियोंने किवाड़ खोले और स्वामीको प्रणाम किया। कुमारने कहा,—"जबतक मैं उस वेश्याको सिख-लाता-पढ़ाता रहूँ, तबतक तुम सब यहीं रहना।" यह कह फिर, उन्हें किवाड़ बन्दकरनेके लिये कहकर उन्होंने कुट-नीके पास आकर कहा,—"मुझे तो उन स्त्रियोंके दुःखकी बात मालूम हो गयी। अब तो मुझे तुम्हारेही घरमें रहकर उनका उपाय करना पड़ेगा।" वेश्याने कहा,—"हे ज्योतिषीजी? क्या तुम्हें और कोई विद्या सिद्ध है?" कुमारने कहा,—"मैं तो सब कुछ जानता हूँ। मैं सर्वज्ञ हूँ। मैं बालकसे युवा, युवासे बालक और वृद्धसे जवान बना दे सकता हूँ।" यह सुन, उस वेश्याने बड़े आनन्दके साथ कहा,—"हे द्विज-राज। मैं बुढ़िया हो गयी हूँ। इस लिये मुझे जवान बना दिजिये।" ब्राह्मणने कहा,—"यदि मैं तुम्हें जवान बना दूँ तो तुम मुझे क्या दोगी?" वेश्याने कहा,—"लाख मुहरें दूँगी।" ज्योतिषीने हामी भरी और कहा,—"हे नायका!

पुनः नव यौवन पानेके लिये तुम्हें पहले सिर मुँडाकर नंगी होकर मेरे अदृश्यांजनको लगाकर अदृश्य हो जाना होगा और जलती हुई भट्ठीसे आग ले आनी होगी। उसी आगके द्वारा मैं उस विद्याका आह्वान करूँगा। उस विद्याका आह्वान करतेही तुम सुन्दर और जवान हो जाओगी।" ज्योतिषीके मुँहसे यह बात सुनतेही उस वेश्याने सिर मुँड़ा लिया और नङ्गी हो कर, आँखोंमें अंजन लगाकर, भट्ठीमें से आग लाने गयी। भट्टीकी आगका धुआँ आँखमें लगतेही अंजन धुल गया और वह मुँडे हुए सिरवाली नङ्गी औरत एकदम साफ़ दिखाई देने लगी। उसे देख, बहुतसे लोग चारों ओरसे जमा हो गये और उसे शाकिनी डाकिनी समझ कर हल्ला करने लगे। इतनेमें राजाके आदमी आकर उसे बाँधकर राजाके पास ले गये। यह कौतुक देखनेके लिये राज-दरबारमें बहुतसे तमाशाई इकट्ठे हो गये। कोत-वालने राजाके पास आकर कहा,—"महाराज! यह प्रेतनी नङ्गी होकर लोगोंको तङ्ग करनेके लिये जलती हुई भट्टीमें मन्त्र जगा रही थी। यही देख, हमलोग इसे पकड़ ले आये अब आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा किया जाय।" राजाने कहा,—"कोतवाल! इसे पहले चोरोंकीसी सज़ा देकर कुएमें उलटा लटका कर डाल दो।"

राजाका यह हुक्म होते ही राजाके नौकरोंने पहले तो उसे घुँसे—थप्पड़ और डंडेसे ख़ूब पीटा। इसके बाद गधे पर

बिठाकर उसे शहर—भर घुमाया। रास्तेमें लोग उसे देख कर जमा हो जाते। और—और वेश्याओंने भी उसकी यह सजा आँखों देख ली। देखकर वे सब एक साथ राजाके पास जाकर कहने लगीं,—"हे नाथ! आपने इस अनाथासे कैफ़ियत पूछे बिना ही इसे प्रेतनी समझ कर बहुत कुछ दण्ड दे डाला, यह आपके लिये उचित नहीं है। इसलिये आप उसे बुलवाकर उससे सारा हाल पूछिये।" यह सुन, राजाने उस वेश्याको बुलाकर पूछा, कि यह माजरा क्या है? राजा ने यह सवाल किया ही था, कि इतनेमें कुमार वहाँ पहुँच गये। उनके साथ उनकी चारों स्त्रियाँ भी थीं। आते ही कुमारने उस वेश्याकी करतूत सबपर प्रकट कर दी। साथ ही उन्होंने स्वयं जो चाल चली थी, वह भी कह सुनायी। यह हाल सुनते ही सब वेश्याओंके चेहरे काले पड़ गये। राजाने उसी दम उस वेश्याका सिर काट डालनेका हुक्म जारी किया। कुमारने किसी तरह उसकी जान बचा दी। वह सब लोगोंकी निन्दा करती हुई अपने घर चली गयी। राजा ने कुमारका परिचय पाकर उनकी बड़ी प्रसंशा की और अपनी चार कन्याओंका व्याह उनके सङ्ग कर दिया। कुमार बड़ी धूमधामसे वहाँसे चले। कितने दिन बाद वे हरिपुर पहुँचे। वहाँ वे पहली चारों कन्याएँ भी अपनी—अपनी माँ—बापसे मिलीं और अपनी इच्छा कुमारके सङ्ग व्याही जानेके लिये प्रकट की। व्यापारी भी ऐसा उत्तम जमाई पा-

कर बड़े प्रसन्न हुए। कुमार भी सबकी बधाइयां लेते हुये बड़े सुखसे सुसरालमें रहने लगे। एक दिन कुमार अपनी अवधिकी बात याद आते ही ससुरकी आज्ञा लेकर वैताढ्य—पर्वतकी ओर चले। वहाँ पहुँच, विद्याधरेन्द्रको प्रणाम कर उन्होंने अपना सारा चरित्र कह सुनाया। विद्याधरको कुमारकी यह रामकहानी सुनकर बड़ा ही हर्ष हुआ। एक दिन कुमारने विद्याधरोंके स्वामीसे कहा,—"नरेन्द्र! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं अपने नगरको जाऊँ।" यह सुन, विद्याधरोंके राजाने विमान, धन, रत्न मुक्ता, और मणि आदि अनेक प्रकारकी वस्तुएँ तथा प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ देकर स्नेहके साथ अपनी पुत्रीको उपदेश दे, कुमारको उसके साथ ही अपने घर चले जानेकी अनुमति दी। कुमार विमानमें बैठे हुए हरिपुर आये और अपनी स्त्रियों तथा सोनेके उस पुरुषको साथ ले दशरथपुर पहुँचे। वहाँ मन्त्री और नगरके लोगों तथा महाजनोंने बड़ी धूमधामसे उनका नगरमें स्वागत किया। कुमार बड़े प्रेमसे सब सुख भोगते हुए राज्य करने लगे। एक दिन कुमारको अपने पितासे मिलनेकी बड़ी इच्छा हुई। वे बहुतसा सैन्य और माल—मता लिये हुए उज्जयिनी पुरकी ओर चले। रास्तेमें जो—जो देश मिलते गये, उन्हें अपने अधीन करते हुए वे मालवदेशके अवन्ती नगरमें आये और पहले अपने पिताके पैरोंपर सिर झुका माता को प्रणाम करने गये। जयसिंह राजाको अपने पुत्रकी

यह सम्पदा देख, बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने बड़े आनन्दसे खूब धूमधाम करते हुए कुमारको नगरमें प्रवेश कराया। सब लोग बड़े सुखसे रहने लगे। एक दिन राजाने पहलेका सब हाल पूछा, तो कुमारने आदिसे अन्ततक सारी कथा कह सुनायी; यह सुन, राजाको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने प्रधान मन्त्रीको बुलाकर सूर्य्यकी तरह चमकता हुआ सुनहला मुकुट राजकुमारको पहनाया। तब राजकुमारने सुवर्ण पुरुषको कटवाकर पृथ्वीके सभी लोगोंकी दरिद्रता दूर करनेकी इच्छा से सबको खूब सोना लुटाया। इसी तरह दान—पुण्य करते हुए सुखसे समय बीतता गया। एक दिन राजा कुमारके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे। इसी समय वनके रक्षकने आकर फलकी भेंट राजाके सामने रखी और कहा,—"महा राजा! शम—दम आदि गुणोंसे युक्त युगन्धराचार्य मुनि, जो चारों प्रकारके ज्ञानको धारण करनेवाले हैं, पाँच सौ साधुओंके साथ उज्जयिनी—नगरके उपवनमें पधारे हैं। वन—रक्षकके मुँहसे ऐसे गुणी आचार्यके आगमनका वृत्तान्त श्रवणकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और कुमार तथा अन्य बहुत से लोगोंके साथ उनको वन्दना करनेके लिये उपवनमें आ पहुँचे। विनय और भक्तिके साथ गुरुको प्रणाम कर राजा उनके सामने ही बैठ गये और धर्मदेशना सुनने लगे। आचार्य भी उचित उपदेश देते हुए बोले—"हे भव्यो! जीवोंकी रक्षा करना, वीतरागकी पूजा करना, भक्तिके साथ सिद्धान्तको

श्रवण करना, साधुको प्रणाम करना, अहंकारको दूर करना, सम्यक् गुरुको मानना, माया और कपटसे दूर भागना, क्रोध को दवाना, लोभ—रूपी वृक्षको जड़से उखाड़ फेंकना, मनको वशमें रखना, और इन्द्रियोंको क़ाबूमें रखना। जो इन ग्यारह बातोंको याद रखता और इनके मुताबिक़ चलता है, वह मानों मुक्तिका मार्ग मालुम कर लेता है।"

इसी प्रकार गुरुने पहले बतलाये अनुसार पर्वोंका माहात्म्य भी कह सुनाया। यह सब धर्मको बातें सुन, राजाने पूछा,—"हे स्वामी! सब पर्वोंसे बढ़कर शाश्वत विशिष्ट पर्व कौनसा हैं?" आचार्यने कहा,—"हे राजन्! सब पर्वों से बढ़ कर शाश्वत पर्व पर्यूषण है।"

राजाने फिर पूछा,—"इस पर्वकी आराधना किसनेकी और उसका क्या फल पाया?" यह सुन, गुरुने कहा,—

चौथा प्रस्ताव ।

कुमार गजसिंहके पूर्व भवकी कथा ।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध देश है। उसके राजगृह नामक नगरमें सुमित्र नामक एक क्षत्रिय पुत्र था, जो भद्रिक होते हुए भी मिथ्यादृष्टि, कौलधर्म आदि पाखण्डोंमें फँसा था। एक दिन वह शिकार खेलनेके लिये जङ्गलमें गया। उसी समय यौवन मदसे मस्त हो मृग--मृगियोंको परस्पर क्रीड़ा करते देख, उसने उन्हें बाणसे मार गिराया। वे दोनोंने मरकर अकाम-निर्जराके कारण मनुष्यको देह पायी। मनकी गति और शुभ कर्मके योगसे तुममें तो उस मृगका जीव आया और वह मृगी प्रेतनी हो गयी। सुमित्री क्षत्री वनमें मृगोंकी खोजमें घुमते-फिरते एक जगह मुनिको देखकर बड़ा लज्जित हुआ। साथ ही वह अच्छे परिणामके कारण मुनिको प्रणाम कर वहीं बैठ गया। मुनिने धर्मदेशना देते हुए कहा,—"हे महानुभाव! सदा जीवदया करते रहो, इन्द्रियोंको वशमें रखो, सत्यवचन बोलो। यही धर्मका रहस्य है। जो प्राणि वध करनेमें सुखी होते हैं, लोगोंके दिल पर चोट पहुँचानेवाली बात बोलते

हैं, परायेको दुःख देनेवाला काम करते हैं, वे जीते जी मरेके समान हैं। जो मरते समय मुँहमें तृण दाब ले, उसे वैरी भी छोड़ देता है, फिर रात-दिन तृण ही खानेवाले पशुओंको क्यों मारना? एक अकेले अपने जीको खुश करनेके लिये सैकड़ों जीवोंको दुःख देना किस कामका? भला इस संसारमें कोई के दिनोंका मिहमान है? इसलिए हिंसा कभी नहीं करना। यह उपदेश सुन, अपने पापोंको याद करके काँपता हुआ सुमित्र बोला,—"स्वामी! मैंने बड़ा पाप किया है। अब मेरे पाप कैसे दूर होंगे?" मुनिने कहा,—"यदि तुम पाप कर चुके हो, तो उससे डरते हुए श्री पर्यूषण पर्वके समय अट्ठम, अक्षयनिधि छट्ठभक्त पञ्चमशिखरिणी, अट्ठाई आदि तप करो और विधि—पूर्वक इनकी आराधना करो, तो तुम्हारे सारे पाप कट जायेंगे। हालमें जो तुमने मृगयाके व्यसनके कारण मृगके जोड़ेको मार गिराया, यह बहुत ही बुरा किया. पर यदि तुम पर्युषणपर्वको अराधना करो, तो अगासी भवमें तुम्हारे पापका भार कम हो जायेगा। उसके बाद बराबर इस पर्वको आराधना करनेसे उत्तरोत्तर तुम्हें सुख ही होगा और तुम मुक्ति पा जाओगे।"

मुनिको यह बात सुन, सुमित्रो क्षत्रियने जीवदयारूपी व्रत धारण कर पर्यूषणपर्वकी आराधना करनेका अभिग्रह ग्रहण किया और मुनिको प्रणाम कर, घर आ, उसी दिनसे अखण्ड व्रतका पालन करने लगा। उसने सम्यक् रूपसे इस पर्वका

आराधन किया, जिसके प्रभावसे उसने शुभानुबन्धके कारण समाधि—मरण पाया और तुम्हरा पुत्र हुआ। पूर्व भवके वैरके ही कारण तुम्हें अपने पुत्रपर क्रोध हुआ और तुमने उसे मार डालनेका हुक्म दिया। प्रेतनीने भी पूर्व वैरके ही कारण कुमारको देखते ही तुम्हें मार डालनेके इरादेसे देवदंभकी बात तुम्हें दिखायी; पर यह सब कर्म बेकार नहीं हुआ। देशाटनमें कुमारने जो सम्पत्ति पायी वह पर्युषण-पर्वके आराधन करनेका ही परिणाम है।

इस तरह गुरुके मुखसे पूर्व जन्मका हाल सुनकर कुमारको जातिस्मरण हो आया। राजा जयसिंहको भी उनका उपदेश सुनकर संसारसे वैराग्य हो गया। वे कुमार गजसिंहको ही राजपाट सौंपकर दीक्षा ले, वहीं चारित्र ग्रहण कर उच्च जीवन व्यतीत करने लगे। कुमार गजसिंहने भी गुरुके मुँहसे श्रीसम्यक्त्व मूल बारह व्रत सहित श्रीपर्युषण-पर्वकी आराधनका उपदेश सुन, उसे ग्रहण करनेका अभिग्रह लिया। वे बड़े सुखसे राज्य चलाने लगे। श्रीपर्यूषण-पर्वकी आराधना करनेसे ही उन्हें सुवर्ण—पुरुष प्राप्त हुआ, विद्याएँ मिलीं और वासुदेवकी तरह आधे भारतवर्षको अपने अधीन कर हजारों राजाओंके सिरपर अपनी आज्ञाका चक्र चलाते हुए राज्य करने लगे। उनके द्वारा श्रीजिनशासनका प्रभाव भी खूब फैला। उन्होंने आधे भारतवर्षसे चोरी, हिंसा असत्य, पिशुनता, मत्सर, जीव-वध और द्यूत आदि व्यसनों और पापोंके

नाम—निशानतक दूर कर दिये। उन्होंने गाँव-गाँवमें श्री अरिहन्तके मन्दिर बनवा दिये। सब जगह गुरुकी पूजा होने लगी। प्रत्येक पर्वके अवसरपर अमारीकी घोषणा होने लगी। जैसे—जैसे पृथ्वीमें धर्मकी वृद्धि होने लगी, वैसे—वैसे समयपर वर्षा होती, चौमासामें जब लोग आसमानकी ओर देखते, तभी पानी बरसने लगता,—हाँ, असमयमें नहीं बरसाता था—पृथ्वी खूब धान उपजाती, गायें बहुत दूध देतीं, वृक्षोंमें खूब फल—फूल लगे रहते, भूमिमें रत्न पैदा होने लगे, लोगोंके मनसे चिन्तारूपी रोग नष्ट हो गया, लोग नाती-पोतेका सुख देख-देखकर बड़े प्रसन्न होते, मनुष्योंकी लम्बी आयु हो गयी, लोग जो चाहते वही मिल जाता, इसी तरह सब लोग सुखी हो गये। जो लोग मिथ्यात्व या पाप फैलाते उन्हें शासनाधिष्ठाता देवी—देवता ही दण्ड दे देते। अब राजा होनेपर राजा गजसिंहकी कैसी ऋद्धि बढ़ी, उसका हालात सुनिये —

राजा गजसिंहकी ऋद्धि।

"वे सोलह हज़ार देशोंके स्वामी हो गये। उतने ही राजा उनके सेवक हो गये। पाँच सौ रानियाँ हुईं। चौंतीस लाख हाथी, चौंतीस लाख घोड़े, चौंतीस लाख रथ हो गये; अड़तालीस करोड़ अरिहन्तके चैत्य हो गये। पाँच सौ

पुत्र पैदा हुए। इस प्रकार वे निष्कण्टक अखण्ड राज्य बहुत दिनोंतक करते रहे। अन्तमें कुमार महेन्द्रदत्तको राजपाट दे कर श्रीजयचन्द्राचार्यसे दीक्षा ले, बहुत उग्र भाव से तप, चारित्रका पालन करते हुए पर्युषण-पर्वका आराधना कर उन्होंने महान् अभ्युदयका हेतु—स्वरूप जिन नाम कर्म उपार्जन किया। निदान, शुभानुभावसे अन्तकालमें अनशन कर बारहवें देवलोकमें जा देवता हुए। वहाँसे चल कर पूर्व महाविदेहमें तीर्थङ्करका पद पा, अरिहन्त-पदका भोग कर मुक्तिपद पा जायेंगे।"

इस गजसिंह राजाकी कथाको श्रवण कर इस पर्वको विधि—पूर्वक पालनेका यत्न करना चाहिये। अच्छी बुद्धि रखते हुए शुभध्यानसे देव और गुरुको प्रणाम करे और दान दे, जिसमें राज्य—सुख और सम्पत्तिका लाभ राजा गजसिंह-की तरह हो।

इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीके मुँहसे श्रीपर्यूषण-पर्वका फल बतलानेवाली राजा गजसिंहकी कथा सुनकर श्रेणिक आदि सभी लोग अट्ठाई आदि महोत्सवके साथ श्रीपर्युषण-पर्व की आराधना करने लगे। बड़े आनन्दसे श्रीवर्द्धमान जिनकी वन्दना कर सब लोग अपने—अपने घर चले गये। भगवान् भी पृथ्वीतल पर विचरण करने लगे। यही इस पर्वकी सविस्तार विधि है। जो उत्तम पुरुष इस उत्तम आचारका प्रचार करता है। उनकी बहुत भलाई होती है और उसके पापों

का नाश हो जाता है। भव्य प्राणियोंको खूब सम्पत्ति बढ़ती है, बुद्धि उज्ज्वल होती है। इस उत्तम पर्वको आराधना करनेसे इस भवमें सुख होता है, परभवमें देवत्व मिलता है और पीछे मुक्तिका सुख भी मिल जाता है।
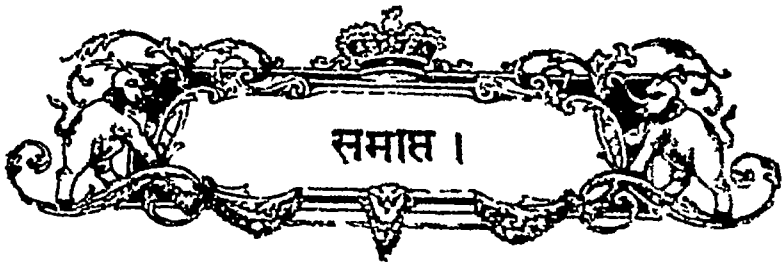
आदिनाथ-चरित्र ।

हमारे यहाँ आदिनाथ भगवानका सुविस्तृत एवं सचित्र जीवन चरित्र बड़ी ही सरल एवं रोचक हिन्दी भाषामें छपाहुआ मिलता है । आपने अपने जीवन भरमें ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर पुस्तक नहीं देखी होगी । इसके एक एक चित्र बड़े ही मनोरञ्जक हैं । जिनके देखने मात्रसे ही भगवानका वह आदर्श एवं प्रतिभाशाली जीवन अपनी आँखोंके समक्ष दीख आता है, भगवानका आदिसे अखीर तकका सारा चरित्र दीया गया है । इसके पढ़नेसे जैन धर्मका पूरा हाल मालूम हो जाता है । भगवानके आदिके तेरह भवोंका वर्णन भी सुविस्तृत दीया गया है । इस चरित्रके पढ़ जानेसे प्राचीन कालकी सर्व घटनाओंका हाल मालूम हो जाता है । भगवानने किसतरह लोक व्यवहार चलाया । किसतरह राज्य पालन कीया एवं किसतरह समारसे विरक्त हो कर प्राणियोंका उद्धार कीया । ये सब बातें बड़ी सरल एवं आधुनिक उपन्यस शैलीके अनुसार हिन्दी भाषामें वर्णित की गई है । इसके पढ़नेमें सब किसीको अनुपम आनन्द अनुभव होता है, आप एक पुस्तक आज ही अवश्य मंगवाइये । मूल्य सजिल्द ५) अजिल्द ४)

मिलनेका पता—

पण्डित काशीनाथ जैन ।

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता ।

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता ।

सुरसुन्दरी